अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

अप्रैल २०२०

श्रीमाँ का स्थायी आगमन

(शताब्दी वर्ष)

विषय-सूची

सन्देश/सम्पादकीय		३
माताजी	स्व. रवीन्द्रजी	५
माँ और उनके कार्य का स्वरूप	श्री नलिनीकान्त गुप्त	११
सद्‌गुणों के उत्सव में	'श्रीमातृवाणी' से	१९
जापान के बारे में	'श्रीमातृवाणी' से	२२
कठिनाई में श्रीमाँ की सहायता पाने का गुर	श्रीअरविन्द	२५
माँ जाग उठी है	वन्दना	२९
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		३८
एक शिष्या के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४२
"दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : ध्यान के विभिन्न प्रकार	नवजातजी	४५
'योग के तत्त्व' : काम-वासना—भोजन—नींद	श्रीअरविन्द	४९
स्वर्ण में रूपान्तरित कर लिया है	अनु. वन्दना	५४
झुंझुनू की सूचना	आवरण	३

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org Website: www. aurosociety.org

सन्देश

'क्ष' ने मुझसे कहा कि हम जो कुछ भी करते हैं वह भगवान् ही हमारे द्वारा करते हैं। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि हम जो कुछ करते हैं वह भगवान् द्वारा किया जाता है, क्योंकि हम हमेशा ठीक चीज़ नहीं करते। क्या उसकी बात में कुछ सच्चाई है?

उसमें सच्चाई यह है कि वैश्व शक्ति सब कुछ करती है और विराट् पुरुष उसकी हर क्रिया को सहारा देते हैं। लेकिन यह वैश्व शक्ति एक ऐसी शक्ति है जो अज्ञान की अवस्थाओं में काम करती है—वह निम्न प्रकृति के रूप में प्रकट होती है और निम्न प्रकृति तुमसे ग़लत चीज़ें करवाती है। जब तक तुम कोई ज़्यादा अच्छी चीज़ नहीं चाहते तब तक भगवान् इन निम्न शक्तियों की लीला *होने* देते हैं, लेकिन अगर तुम साधक हो तो तुम निम्न शक्तियों की लीला को नहीं स्वीकारते। उसकी जगह तुम दिव्य जननी की ओर मुड़ते हो और तुम उनसे निवेदन करते हो कि निम्न शक्तियों की जगह वे तुम्हारे अन्दर क्रिया करें। केवल तभी जब तुम पूरी तरह से, अपनी सत्ता के हर भाग में माँ भगवती, और केवल उन्हीं की ओर मुड़ो, तभी भगवान् तुम्हारे द्वारा सब काम करेंगे।

२७ मई १९३३ **श्रीअरविन्द**

सम्पादकीय : अप्रैल २०२०—हम मना रहे हैं श्रीमाँ के पॉण्डिचेरी में स्थायी निवास का शताब्दी-वर्ष... २४ अप्रैल १९२० में दूसरी बार पॉण्डिचेरी में पदार्पण कर श्रीमाँ यहीं बस कर, हमेशा के लिए हम सबकी हो गयीं।

श्रीमाँ के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न लेखों का चयन है इस अंक में।

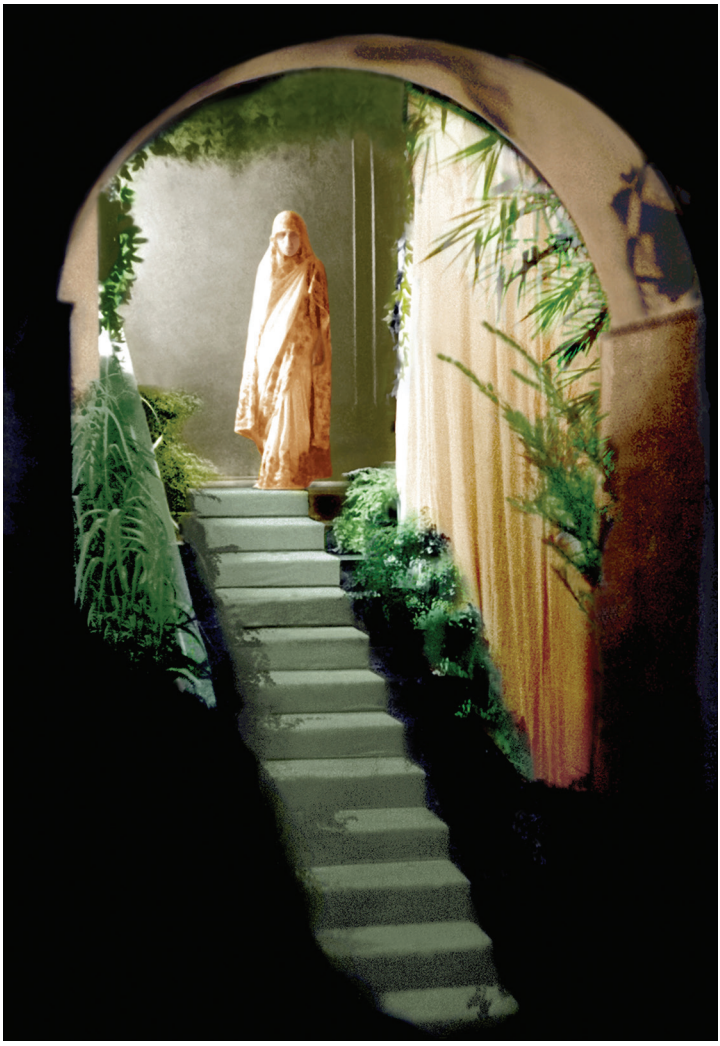

उतरो भू पर ललाम!

माताजी

माताजी के बारे में कुछ कहने से पहले यह जानना उपयोगी होगा कि वे हैं कौन और इस विषय में श्रीअरविन्द से अधिक प्रामाणिक कौन हो सकता है?...

उनका कहना है कि "माताजी अतिमानस को उतारने के लिए आयी हैं और उसका अवतरण ही उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति को सम्भव बनाता है।"

वे एक और जगह कहते हैं: "एक ही दिव्य शक्ति है जो सारे विश्व में और व्यक्ति में, और व्यक्ति तथा विश्व के परे काम करती है। माताजी इन सबकी प्रतिनिधि हैं। वे यहाँ एक ऐसी चीज़ को उतारने के लिए काम कर रही हैं जो अभी तक भौतिक जगत् में प्रकट नहीं हुई है, वे यहाँ पर जीवन को रूपान्तरित करने के लिए काम कर रही हैं—तुम उन्हें इस उद्देश्य से काम करती हुई दिव्य शक्ति मान सकते हो।"

माताजी ने सन् १८७८ में २१ फ़रवरी के दिन पैरिस में जन्म लिया। उन्होंने जन्म तो यूरोप में लिया पर उनकी रगों में अरब और तुर्क रक्त था। उनके माता-पिता उनके जन्म से कुछ पहले ही फ़्रांस में आकर बसे थे।

बचपन से ही माताजी और बच्चों से बिलकुल अलग थीं। शायद वे दो-तीन वर्ष की अवस्था से ही बाहरी रूप से जाने बिना ही ध्यान किया करती थीं।

१९२० में उनसे किसी ने दो प्रश्न किये थे:

१. आपको धरती पर जो कार्य पूरा करना है उसकी चेतना आपके अन्दर कब जागी?

२. आप श्रीअरविन्द से कब और कैसे मिलीं?

माताजी अपने बारे में बात करना पसन्द न करती थीं फिर भी इस जिज्ञासु के आग्रह पर उन्होंने उत्तर दिया, "अपने उद्देश्य के ज्ञान के बारे में यह कहना मुश्किल है कि वह मुझे कब प्राप्त हुआ। शायद मैं उसके साथ ही पैदा हुई थी। मन और मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ इस चेतना की यथार्थता और पूर्णता भी बढ़ती गयी।

११ और १३ की अवस्था के बीच कुछ चैत्य और आध्यात्मिक

अनुभूतियों ने मुझे न केवल भगवान् की उपस्थिति के दर्शन करवा दिये बल्कि यह भी बतला दिया कि मनुष्य उनके साथ एक हो सकता है, उन्हें पूर्ण रूप से चेतना और कार्य में चरितार्थ कर सकता है, उन्हें धरती पर दिव्य जीवन में अभिव्यक्त कर सकता है। मुझे कई शिक्षकों ने मेरे शरीर की सोयी हुई अवस्था में यह बतलाया और इसके लिए साधना सिखलायी। उनमें से कुछ लोग मुझे बाद में सशरीर भी मिले।

उसके बाद आन्तरिक और बाह्य विकास चलता रहा। इनमें से एक सत्ता के साथ चैत्य और आध्यात्मिक सम्बन्ध अधिकाधिक स्पष्ट रूप में प्रायः ही होने लगा और यद्यपि मैं भारतीय दर्शन या धर्म के बारे में न के बराबर जानती थी फिर भी मैं उन्हें कृष्ण कहने लगी और मुझे पता चला कि मैं उन्हीं के साथ मिल कर धरती पर भगवान् का काम करूँगी।

१९१० में मेरे पति, अकेले पॉण्डिचेरी आये जहाँ बड़ी मज़ेदार और विचित्र परिस्थितियों में उनका श्रीअरविन्द से परिचय हुआ। तब से हम दोनों की भारत आने की प्रबल इच्छा थी। मैंने हमेशा भारत को ही अपनी सच्ची जन्मभूमि माना था। १९१४ में हमें यह आनन्द प्रदान किया गया।

जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा मैंने पहचान लिया कि ये तो मेरी वही सुपरिचित सत्ता हैं जिन्हें मैं कृष्ण के नाम से जानती थी... मेरा ख़याल है कि इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मुझे यह पूरा-पूरा विश्वास क्यों है कि मेरा स्थान उन्हीं के पास और मेरा काम उन्हीं के साथ, यहाँ, भारत में है।"

१९२० में जापान में रहते हुए माताजी ने अपना परिचय देते हुए लिखा :

"मैं किसी देश, किसी सभ्यता, किसी समाज, किसी जाति की नहीं हूँ, मैं केवल भगवान् की हूँ।

मैं किसी मालिक, शासक, क़ानून, सामाजिक प्रथा का हुकुम नहीं मानती, केवल भगवान् की आज्ञा का पालन करती हूँ।

मैंने सब कुछ, इच्छा, जीवन, आत्मा, सब कुछ उन्हें अर्पित कर दिया है, अगर उनकी इच्छा हो तो मैं एक-एक बूँद करके अपना सारा रक्त, पूरे आनन्द के साथ उन्हें अर्पित कर सकती हूँ। उनकी सेवा में कुछ भी बलिदान न होगा क्योंकि सब कुछ पूर्ण आनन्द होगा।"

सन् १९३७ में माताजी अपने भगवान् से कहती हैं :

"मैं भौतिक जगत् में, धरती पर क्या-क्या लाना चाहती हूँ :

१. पूर्ण चेतना।

२. समग्र ज्ञान, सर्वज्ञता।

३. अपराजेय, अबाध, अपरिहार्य शक्ति और सर्वशक्तिमत्ता।

४. पूर्ण, सतत, अडिग, हमेशा नया होता रहने वाला स्वास्थ्य।

५. शाश्वत यौवन, सतत विकास, अबाध प्रगति।

६. पूर्ण सौन्दर्य, जटिल और सम्पूर्ण सामञ्जस्य।

७. अखूट, अनुपम धन-समृद्धि, समस्त जगत् के धन-वैभव पर प्रभुत्व।

८. रोग-मुक्त करने और सुख देने की क्षमता।

९. सभी तरह की दुर्घटनाओं से मुक्त रहने, सभी विरोधी आक्रमणों के आगे अजेय रहने की क्षमता।

१०. सभी क्षेत्रों और सभी क्रियाओं में अपने-आपको पूरी तरह अभिव्यक्त करने की क्षमता।

११. भाषाओं की प्रतिभा, अपने-आपको सभी के सामने पूरी तरह समझा सकने की क्षमता।

१२. और वह सब कुछ जो तेरा काम पूरा करने के लिए ज़रूरी हो।"

इसी तरह एक और जगह कहती हैं :

"मैं चाहती हूँ :

१. व्यक्तिगत रूप से सदा-सर्वदा परम प्रभु की पूर्ण अभिव्यक्ति होना।

२. कि तुरन्त अतिमानसिक विजय, अभिव्यक्ति और रूपान्तर सिद्ध हो जायें।

३. कि वर्तमान और भविष्य के लिए समस्त संसार से दुःख-दारिद्र्य ग़ायब हो जायें।"

लोग कहते हैं कि संसार में कहीं न्याय नहीं है, भगवान् मनुष्य के साथ न्याय नहीं करते लेकिन क्या वे जानते हैं कि न्याय क्या है और उसकी क्रिया कैसी होती है? लीजिये, माताजी से सुनिये :

"न्याय वैश्व प्रकृति की गतिविधियों का कठोर, युक्तियुक्त नियतिवाद

है। रोग इसी नियतिवाद का भौतिक शरीर में विनियोग है। चिकित्सक का मन इस अपरिहार्य न्याय की नींव पर खड़ा होकर ऐसी परिस्थितियाँ लाने की कोशिश करता है जिन्हें युक्तियुक्त रूप से अच्छे स्वास्थ्य की ओर ले जाना चाहिये। नैतिकता यही चीज़ सामाजिक शरीर में और तपस्या इसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में कार्यान्वित करती है।

केवल भागवत कृपा में ही वह शक्ति है जो वैश्व न्याय के मार्ग में हस्तक्षेप कर सकती है और उसे बदल सकती है। अवतार का महान् कार्य है, भागवत कृपा को धरती पर प्रकट करना। अवतार के शिष्य होने का अर्थ है, भागवत कृपा का यन्त्र बनना। माता तादात्म्य द्वारा वैश्व न्याय-तन्त्र के पूर्ण ज्ञान के साथ, तादात्म्य द्वारा भागवत कृपा की महान् वितरक हैं।

और उनकी मध्यस्थता द्वारा भगवान् के प्रति सच्ची और विश्वासपूर्ण अभीप्सा की हर गति, उत्तरस्वरूप भागवत कृपा के हस्तक्षेप को नीचे उतार लाती है।

हे प्रभो! कौन है जो तेरे सामने खड़ा होकर पूरी सच्चाई के साथ कह सके कि उसने कभी कोई भूल नहीं की। दिन में कितनी बार हम तेरे कार्य के विरुद्ध अपराध करते हैं और हमेशा तेरी कृपा उन्हें मिटा देने के लिए आ जाती है।

तेरी कृपा के हस्तक्षेप के बिना, कौन है जो बहुधा तेरे वैश्व न्याय के विधान के अपरिहार्य खड्ग के नीचे न आता।

यहाँ हर एक, समाधान के लिए किसी-न-किसी असम्भवता का प्रतिनिधि है, लेकिन चूँकि तेरी भागवत कृपा के लिए सब कुछ सम्भव है, तो क्या यह तेरा कार्य न होगा कि समग्र में और ब्योरे में, इन असम्भवताओं को भागवत उपलब्धियों में रूपान्तरित कर दे?"

१५ जनवरी १९३३

१५ अगस्त १९५४ को माताजी ने सभी आश्रमवासियों और बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों के आगे घोषणा की:

"मैं इस दिन के साथ अपनी एक चिर-पोषित अभिलाषा की अभिव्यक्ति जोड़ देना चाहती हूँ—वह है भारतीय नागरिक बनने की अभिलाषा। सन् १९१४ से ही, जब मैं पहली बार भारत में आयी, मैंने अनुभव किया कि

भारत ही मेरा असली देश है, यही मेरी आत्मा और अन्तःकरण का देश है। मैंने निश्चय किया था कि ज्यों ही भारत स्वतन्त्र होगा मैं अपनी इस अभिलाषा को पूरा करूँगी। लेकिन मुझे उसके बाद भी यहाँ, पॉण्डिचेरी के आश्रम के प्रति अपने भारी उत्तरदायित्व के कारण बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी। अब समय आ गया है जब कि मैं अपने विषय में यह घोषणा कर सकती हूँ।

लेकिन, श्रीअरविन्द के आदर्श के अनुसार, मेरा ध्येय यह दिखाना है कि सत्य एकत्व में है, न कि विभाजन में। एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिए दूसरी को छोड़ना कोई आदर्श समाधान नहीं है, इसलिए मैं आशा करती हूँ कि मुझे दोहरी राष्ट्रीयता अपनाने की छूट रहेगी, अर्थात्, भारतीय हो जाने पर भी मैं फ्रेंच बनी रहूँगी।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा से मैं फ्रेंच हूँ। अपनी इच्छा और रुचि से मैं भारतीय हूँ। मेरी चेतना में इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है, इसके विपरीत वे एक-दूसरे से भली प्रकार मेल खाती हैं और एक-दूसरे की पूरक हैं, मैं यह भी जानती हूँ कि मैं दोनों देशों की समान रूप से सेवा कर सकती हूँ, क्योंकि मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्रीअरविन्द की महान् शिक्षाओं को मूर्त रूप देना। और उन्होंने अपनी शिक्षाओं में यह प्रकट किया है कि सारे राष्ट्र वस्तुतः एक हैं और सुसंगठित एवं समस्वर विविधता के द्वारा इस भूमि पर भागवत एकत्व को अभिव्यक्त करने के लिए ही उनका अस्तित्व है।"

माताजी के अस्सीवें जन्मदिन पर उनसे बहुत आग्रह किया गया कि वे अपने कुछ संस्मरण सुनायें। उन्होंने कहा, "संस्मरण संक्षिप्त होंगे। मैं श्रीअरविन्द से मिलने के लिए भारत आयी, मैं उनके साथ रहने के लिए ही भारत में रही। जब उन्होंने शरीर त्यागा तो मैं उनका कार्य करने के लिए ही बनी रही, उनका कार्य है, सत्य की सेवा करना और मानवजाति को प्रकाश देना और धरती पर भगवान् के राज्य को जल्दी लाना।"

लेकिन लोगों की उत्सुकता तो बनी ही रहती थी, वे उनके बारे में तरह-तरह की बातें जानना चाहते थे। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में माताजी कहती हैं : "इस शरीर के भौतिक जीवन के बारे में प्रश्न मत पूछो। वे अपने-आप में मज़ेदार नहीं हैं और उन्हें ध्यान न खींचना चाहिये।

मैं अपने सारे जीवन में, जाने या अजाने वही करती आयी जो भगवान् ने चाहा, मैं वही बनी जो भगवान् मुझे बनाना चाहते थे, मैंने वही किया जो भगवान् मुझसे करवाना चाहते थे।"

इस पर भी उनके बारे में कुछ जानने की इच्छा बनी रही तो माताजी ने किसी को लिखा : "यह आख़िरी बार, मेरे भूतकाल के बारे में सार्वजनिक रूप से कुछ कहा जाये—यह शरीर नहीं चाहता कि उसके बारे में कुछ कहा जाये, वह चाहता है कि उसे शान्त रहने दिया जाये और हो सके तो उसकी ओर ध्यान ही न दिया जाये।"

ऐसी थीं माताजी। वे जो आन्तरिक काम करती थीं उनके बारे में तो वे ही जानें पर बाह्य रूप से, भौतिक कामों की ही अगर सूची बनायी जाये तो एक पोथी तैयार हो जायेगी। आश्रम की, शिष्यों की, बाहर के जिज्ञासुओं की हर एक और हर प्रकार की समस्या का समाधान करना, रोते को आश्वासन देना, उद्धत का सिर नीचा करना, जिज्ञासु को ज्ञान प्रदान करना और बड़ी कठिन समस्याओं का हल करना—यह सब उनके लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण था।

एक बार आश्रम के कई विभागाध्यक्ष अपनी "बड़ी-बड़ी समस्याएँ" लेकर माताजी के पास आये हुए थे और माताजी एक छोटे बच्चे की स्कूल-सम्बन्धी शिकायतें सुनने में व्यस्त थीं। 'बड़ों' को अवसर न मिला तो उनमें से एक ने पूछ ही तो लिया, "माँ, जब हम अपनी समस्याएँ लेकर आते हैं ठीक तभी यह लड़का आकर अपनी बक-बक करने लगता है, आप उसे इतना महत्त्व क्यों देती हैं?" माताजी ने हँसते हुए कहा, "मेरे लिए तुम दोनों की समस्याओं का समान मूल्य है", और सचमुच जीवन में ऐसा ही देखा जाता था, उनके सामने कोई बड़ा या छोटा न था। उनका वरद हस्त सब पर समान रूप से रहता था; वहाँ कोई समस्या या कोई व्यक्ति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण और कोई नगण्य या उपेक्षणीय न था। उन्होंने ही तो कहा था कि भागवत कृपा के आगे कौन योग्य है और कौन अयोग्य। सभी उसी दिव्य जननी की सन्तान हैं। वे हर एक को उसकी ग्रहणशक्ति के अनुसार, उसकी आवश्यकता के अनुसार देती हैं।

'लाल कमल' पुस्तक से —स्व. रवीन्द्रजी

माँ और उनके कार्य का स्वरूप

(आश्रम के सचिव, हम सबके माननीय और प्रिय नलिनी-दा कई बार विद्यार्थियों तथा आश्रमवासियों को अंग्रेज़ी में कुछ सुनाया करते थे, वे बड़ों की कक्षाएँ भी लेते थे। प्रस्तुत लेख उन्हीं वक्तव्यों में से एक है। यह पुस्तकाकार रूप में 'शाश्वत हैं माँ' के नाम से प्रकाशित हुई है। इसका अनुवाद आश्रम की साधिका श्यामकुमारी जी ने किया है। —सं.)

मुझे तुमसे माँ के विषय में कुछ कहना है—उनके जीवन के, उनके कार्य-कलापों के एक अंश के विषय में।

जैसा कि तुम सब जानते हो कि माँ का जन्म फ़्रांस में, पैरिस में हुआ था और अपने जीवन का प्रथम भाग उन्होंने वहाँ बिताया था। अतः स्वाभाविक था कि उनसे अक्सर कहा जाता था कि वे फ़्रेंच थीं, वे योरोपियन थीं। किन्तु वे इसका सदैव विरोध करती थीं, "मैं फ़्रेंच नहीं हूँ, मैं योरोपियन नहीं हूँ।" वास्तव में उनका परिवार मिस्र से आया था। उनके माता-पिता उनके जन्म से केवल एक वर्ष पूर्व ही पैरिस गये थे। और मिस्र में उनका परिवार एक बहुत पुराने घराने का—शायद एक राजघराने का अंग था—*फ़ेराओं* का। अतः वे रक्त से फ़्रेंच या योरोपियन नहीं हैं, यद्यपि उनका लालन-पालन इसी प्रकार हुआ था। यदि देखा जाये तो वे 'मध्य-पूर्व' की थीं, उस पृथ्वी-खण्ड की जो योरोप के पूर्वी हिस्से और एशिया के पश्चिमी हिस्से को जोड़ता है। इसका अर्थ है, योरोप और एशिया का संगम, दोनों का सामञ्जस्य और यह माँ के चरित्र और उनकी नियति को प्रतिबिम्बित करता है।

जैसा मैंने कहा कि उन्होंने अपने जीवन का आरम्भिक भाग फ़्रांस में बिताया, किन्तु फ़्रांस ही क्यों? इस चुनाव में एक अर्थ निहित है। अब हम उनके जीवन का अर्थ, मूलभूत अर्थ, उनका 'मिशन' और उनका कार्य जानते हैं। वे एक नवीन ज्योति लाने के लिए आयी थीं। वे, एक पुराना संसार अपनी पुरानी प्रकृति, पुरानी संस्कृति के साथ नहीं, वरन् एक नवीन संसार, एक नवीन मानवजाति चाहती थीं। वे अपने साथ वह नवीन ज्योति लायीं जो मनुष्य और संसार की पुनः सृष्टि करेगी, उसे पुनः

आकार देगी। नवीन मानव और फ़्रांस के बीच में क्या सम्बन्ध था? नवीन ज्योति के आने और अभिव्यक्त होने से पहले तुम्हें उसे मन में स्वीकार करना होगा; इसका अर्थ है कि तुम्हें देखना और पहचानना होगा कि यह एक नयी ज्योति है और उसका आह्वान करना होगा। और मनुष्य में मन प्रथम और सबसे ऊँचा ग्रहणकर्ता है। तुम *धम्मपद* की प्रथम पंक्ति, जिसमें बुद्ध की शिक्षा का सारांश है, याद करो, *मनोपुब्बङ्गमा धम्मा*—मन मनुष्य के सभी कार्यों में सर्वोत्तम है। मन सबका अतिक्रमण करता है, सबका आलिंगन करता है। अब अगर ज्योति नीचे आती है और तुम्हारे अन्दर प्रवेश करती है, वह सबसे पहले तुम्हारे सिर का स्पर्श करती है, जिसका अर्थ है तुम्हारे मन का: तुम उसे देखते हो और उसके विषय में सचेतन होते हो। आज फ़्रांस मानवता के सर्वश्रेष्ठ इसी मन का, इसकी संस्कृति और सभ्यता के प्रस्फुटन का प्रतिनिधि है। वे इसलिए वहाँ पैदा हुई थीं ताकि मानवजाति का उच्चतम मन उनके माध्यम से ज्योति को ग्रहण कर सके। उन्होंने वहाँ अपना जीवन उस समय के सर्वाधिक विशिष्ट जनों, वैज्ञानिकों, कलाकारों, कवियों, जो सभी सबसे सुसंस्कृत और सबसे अधिक परिष्कृत स्तर के थे, उनके सम्पर्क में व्यतीत किया। वे वहाँ इसलिए थीं ताकि अपने संसर्ग द्वारा वे उनके अन्दर नवीन ज्योति ला सकें। इसी उद्देश्य से वे एक संस्था, एक दल की सदस्या बन गयीं और उसे नाम दिया गया, *ब्रह्माण्डीय* (कॉस्मिक)। *ब्रह्माण्डीय* का अर्थ है, समस्त संसार का; दूसरे शब्दों में, वे जो कर रही थीं तथा जो प्रदान कर रही थीं वह समस्त विश्व के लिए था, पूर्व और पश्चिम के सभी मनुष्यों के लिए था, सबके लिए। इसका अर्थ यह है कि विश्व का आलिंगन करती हुई एक वैश्व चेतना। उच्चतम मानसिक विकास के द्वारा वे अधिक प्रशस्त मन तक पहुँचने के लिए एक नये प्रकार के मानसिक विश्व की सृष्टि कर रही थीं जो वैयक्तिक अहंकारी मन की पहुँच से दूर था।

जैसा कि मैंने कहा, चूँकि मन अथवा मस्तिष्क मनुष्य का सर्वोच्च भाग है, उसके लिए नवीन ज्योति को अपने सिर के माध्यम से पहले ग्रहण करना अधिक आसान है। इस सम्बन्ध में तुम श्रीअरविन्द की कविता **'स्वर्णिम ज्योति'**[१] को याद करो कि कैसे वह ऊपर से आती है और

[१] लेख के अन्त में यह कविता दी जा रही है—सं.

सबसे पहले सिर में, मस्तिष्क में प्रवेश करती है। वह तुम्हारे विचारों को ज्योतित कर देती है, तुम्हारी समझ को विकसित करती है, प्रशस्त, गहरी और तीव्र करती है। किन्तु समझ पर्याप्त नहीं है, तुम्हें इससे प्रेम करना होगा, केवल तभी तुम इसे अधिकृत करना आरम्भ कर सकते हो। तब 'स्वर्णिम ज्योति' तुम्हारे हृदय में प्रवेश करती है। तब वह और नीचे, एक अधिक ठोस तथा सक्रिय अभिव्यक्ति की ओर बढ़ती है; वह प्राणिक क्षेत्र में प्रवेश करती है। अन्त में 'स्वर्णिम ज्योति' तुम्हारे पाँवों में प्रवेश करती है, अर्थात्, तुम्हारे दैहिक अंगों को अधिकृत कर लेती है; वह उपादान में ठोस हो जाती है और उपस्थित हो जाती है, मानों तुम्हारे शरीर में ही घनीभूत हो जाती है। वह सुन्दर शरीर गढ़ती है। इस तरह माँ मानवता के शीशे में स्वर्णिम ज्योति लाती हैं, उसकी चेतना की सबसे ऊँची सीढ़ी पर, और **दिव्य जीवन** में *दीक्षा* का यह कार्य उन्होंने फ़्रांस में आरम्भ किया था।

अपने कार्य के अगले स्तर के लिए वे जापान गयीं। जापान में वे सुदूर पूर्व में आयीं। उन्होंने वहाँ पाँच वर्ष, पाँच लम्बे वर्ष व्यतीत किये। जापान ध्यान की **ज़ेन** प्रणाली की भूमि है। अर्थात्, आन्तरिक चेतना में प्रवेश करने का एक विशेष पथ, एक तार्किक मानसिक चेतना नहीं, वरन् एक गुह्य और अधिक संवेदनशील क्षेत्र में एक आन्तर दृष्टिपात्। जापानी, एक राष्ट्र के रूप में एक बहुत संवेदनशील प्राण-शक्ति, एक कलात्मक प्राण-शक्ति के प्रतिनिधि हैं, जो शक्ति जीवन में, जीने के तरीक़े में व्यवस्था और सौन्दर्य खोजती है। 'स्वर्णिम ज्योति' को अभिव्यक्त होने के लिए और भौतिक जगत् में अपनी क्रीड़ा के लिए, मानों, उसकी देह अधिकृत करने के लिए, इस प्रकार की प्राण-शक्ति प्राप्त करना और उसे धारण करना आवश्यक है। जापानी पहलवान अपनी प्राणिक शक्ति के लिए, अपनी स्व-नियन्त्रित शक्ति के लिए जाने जाते हैं। (उनमें से लगभग सभी की, जैसा तुम चित्रों में देखते हो, एक बड़ी तोंद होती है, और उन्हें विश्वास है कि तोंद प्राणिक क्षमता का भण्डार-गृह है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं तुम्हें तोंद बढ़ाने की सलाह देता हूँ, कदापि नहीं!) लेकिन शारीरिक कार्य-कलापों में भी शारीरिक शक्ति से अधिक प्राणिक क्षमता आवश्यक है।

हाँ, जापानियों के पास एक प्राण-शक्ति होती है, जो बलशाली, नियन्त्रित, सुव्यवस्थित और संवेदनशील है। तुम्हें माँ की *'प्रार्थना और ध्यान'* में से

एक-दो प्रार्थनाएँ याद होंगी। (इस परिच्छेद के अन्त में हम दोनों प्रार्थनाएँ दे रहे हैं।) वे चेरी के फूलों की बातें करती हैं, जो जापान के कलात्मक संवेदन का, सौन्दर्य के लिए अनुभूति का, एक पवित्र संवेदन-बोध का प्रतीक है; एक रुक्ष और अपरिष्कृत और हिंसक (निम्न) प्राण नहीं, वरन् एक सूक्ष्म, एक प्रिय अन्तरंगता की भावना और एक व्यवस्थित प्रसन्नता; यही है चेरी-पुष्प का अर्थ। माँ ने अपने एक अन्तर्दर्शन का वर्णन भी किया है, यह एक सुन्दर चित्र था, एक जापानी माँ और उसका बच्चा; यह एक नवजात शिशु की प्रतिमा थी, जो मानवता में उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार चेरी-पुष्पों की धरती पर, समस्त विश्व के लिए, एक नये संसार का, एक नये प्राणिक जगत् का प्रवेश कराया जाता है।

१ अप्रैल १९१७

तूने मेरी मूक और आशान्वित आत्मा को परियों के भू-दृश्यों की समस्त भव्यता दिखला दी है : उत्सव में लीन वृक्ष तथा एकाकी राहें आकाश की ओर उठते प्रतीत होते हैं।

लेकिन तूने मुझसे मेरी नियति के बारे में कोई बात नहीं की। क्या उसे मुझसे यूँ छिपा रहना चाहिये?...

फिर से एक बार मैं हर जगह चेरी के वृक्ष देखती हूँ; तूने इन फूलों में एक जादुई शक्ति रखी है : ऐसा लगता है कि वे तेरी एकमात्र 'उपस्थिति' के बारे में बातें करते हैं; वे अपने साथ भगवान् की मुस्कान लेकर आते हैं।

मेरा शरीर विश्राम में है और मेरी आत्मा प्रकाश में खिल रही है : तूने फूलों से लदे इन वृक्षों में किस प्रकार का सम्मोहन रख दिया है?

हे जापान, यह उत्सव की तेरी साज-सज्जा है, तेरी सद्भावना की अभिव्यक्ति है, तेरी शुद्धतम भेंट है, तेरी निष्ठा की प्रतिज्ञा है; यह तेरे कहने का तरीक़ा है कि तू व्योम को प्रतिबिम्बित कर रहा है।

और यह एक भव्य देश है, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों का देश जो देवदारु-वृक्षों से ढका हुआ है और जहाँ की वादियाँ अच्छी तरह जुती हुई हैं; और यह चीनी आदमी, जो छोटे-छोटे गुलाबी गुलाब लाता है, क्या वे निकटस्थ भविष्य की प्रतिज्ञा हैं।

*

७ अप्रैल १९१७

एक गहरी एकाग्रता ने मुझे पकड़ लिया और मैंने देखा कि मैं एक चेरी के फूल के साथ अपने-आपको तदात्म कर रही थी और उसके द्वारा चेरी के सभी फूलों के साथ, और जैसे-जैसे मैं चेतना की गहराई में एक नीलाभ शक्ति-धारा के पीछे-पीछे उतरती गयी, मैं अपने-आप अचानक चेरी का वह वृक्ष बन गयी जो पूजा के फूलों से लदी हुई अपनी असंख्य शाखाओं को अनेक बाहुओं की तरह आकाश की ओर फैला रहा था। तब मैंने स्पष्ट रूप में यह वाक्य सुना :

"तूने अपने-आपको चेरी के पेड़ों की आत्मा के साथ एक कर लिया है ताकि तू भली-भाँति देख सके कि स्वयं भगवान् ही स्वर्ग के प्रति इस पुष्पमय प्रार्थना की भेंट चढ़ा रहे हैं।"

जब मैंने यह लिखा तो सब कुछ मिट गया; लेकिन अब उस चेरी के पेड़ का रक्त मेरी रगों में बह रहा है और उसके साथ बह रही है अतुलनीय शक्ति और शान्ति। मनुष्य-शरीर और वृक्ष-शरीर में क्या अन्तर है? सचमुच कोई अन्तर नहीं : जो चेतना इन दोनों को अनुप्राणित करती है वह अभिन्न रूप से एक ही है।

तब चेरी के वृक्ष ने मेरे कानों में फुसफुसा कर कहा :

"वसन्त के रोगों का इलाज चेरी के फूलों में है।"

माँ सर्जन-चेतना हैं; वे जहाँ भी होती हैं, उन्हें जहाँ जाने को पुकारा जाता है, उनकी उपस्थिति-मात्र सर्जन की ओर अग्रसर होती है तथा समय और स्थान की आवश्यकता के अनुसार एक नये संसार का एवं सत्ता और चेतना के एक नये आयाम का सृजन करती हैं। और वे एक पूरे संसार की सृष्टि करती हैं, और उनकी सृष्टि स्थायी होती है क्योंकि वह मानव के विकास में एक नवीन निष्पादन होता है। इसे संसिद्ध करने के लिए सुव्यवस्थित, सशक्त, सुनियोजित प्राणिक जगत् को—जिसके विषय में हम कह रहे थे—सहारा देने और अभिव्यक्त करने के लिए एक सक्षम शरीर की आवश्यकता है। स्वर्णिम ज्योति को पाँवों में आना होगा। यहाँ पर वे यही कार्य कर रही थीं और इसी के लिए उन्होंने आश्रम का निर्माण किया। तुम सब जानते हो कि माँ शरीर और इन्द्रियों को, स्वर्णिम ज्योति

को ग्रहण करने के लिए तैयार करने के हेतु शारीरिक प्रशिक्षण पर विशेष बल देती थीं। वे सदैव कहती थीं कि शारीरिक शिक्षा हमें नवीन चेतना, नवीन ज्योति के लिए आधार देती है। हमें एक बलवान् शरीर, एक सुन्दर शरीर, एक सहिष्णु शरीर चाहिये; क्योंकि नयी ज्योति शक्तिशाली है, वह केवल ज्योति नहीं है, वह एक शक्ति है; व्यक्ति को उसे सहन करने और उसका आदेश मानने के लिए तैयार होना होगा। वास्तव में, वे यहाँ इस **दिव्य ज्योति** को एक आकार, एक ठोस और भौतिक रूप, एक पार्थिव शरीर देने आयी थीं।

सुन्दर शरीर अपने में एक अन्त, एक परिपूर्ति नहीं है; उसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर प्राण चाहिये। केवल यही नहीं, शरीर और प्राण में परिपूर्णता के लिए व्यक्ति को एक सुन्दर मन उपलब्ध होना चाहिये। माँ ने हमारे लिए जिस शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध किया है वह हमें सुन्दर शरीर के लिए तैयार करने के लिए है। यह विद्यालय जो उन्होंने खड़ा किया है मन को परिष्कृत करने के लिए है। मन के परिष्कार का अर्थ यह नहीं कि उसमें विविध विषयों के बारे में सूचना-मात्र दी जाये, पुस्तकों का अध्ययन किया जाये; उसका अर्थ मन का, मन के उपादान का पवित्रीकरण, परिष्करण तथा ज्योति की खोज और उसे पहचानने के लिए चेतना का एक उन्नयन भी है।

मैंने कहा है कि तुम्हें नवीन ज्योति को पहले सिर के माध्यम से ग्रहण करना है, किन्तु हृदय के माध्यम से भी करना है, और तब तुम्हारी प्रगतिशील प्राणिक ऊर्जा के माध्यम से तुम्हें ज्योति को न केवल देखना और पहचानना है, बल्कि उससे प्रेम भी करना है, उसके प्रति निष्ठावान् होना है।

और यहाँ आता है माँ का हमारे लिए केन्द्रीय कार्य, उनका विशेष उपहार, उनकी **कृपा**। जब तुम किसी वस्तु से प्यार करते हो, कहा जाता है तुम हृदय के माध्यम से प्रेम करते हो, किन्तु प्रेम विभिन्न प्रकार का होता है और हृदय के अन्दर भी एक हृदय है। सच्चा प्रेम, प्रेम जो दिव्य है, वह इस आन्तरिक हृदय में है, जो तुम्हारी अन्तरात्मा है, तुम्हारे अन्दर की यथार्थ सत्ता या व्यक्ति है; और अन्तरात्मा का बाहर आना, सामने आना, यहाँ पर माँ की विशेष कृपा है, तुम सबको, तुममें से प्रत्येक को उनका यह उपहार प्राप्त है। उन्होंने तुम्हें तुम्हारी अन्तरात्मा उपलब्ध करायी है।

मैंने बहुधा कहा है कि हममें से प्रत्येक जो यहाँ पर है उसके लिए यह एक विशेषाधिकार है, तुममें से प्रत्येक के लिए, इस सत्ता को वहन करना, इस आन्तरिक सत्ता को, इस अन्तरंग व्यक्ति को, **दिव्य शिशु** को जो तुम हो, वहन करना सम्भव है। यही है जो तुम्हारे दिव्य व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा है, यही है जो तुम्हें अन्त में एक सुन्दर मन, एक सुन्दर प्राण, एक सुन्दर शरीर—वह सब जिसकी तुम्हें अपने जीवन में आवश्यकता है, वह सब जो तुम्हें यहाँ इस संसार में जो कुछ भी पूर्ण और अनिन्द्य है—प्रदान करेगा।

तुममें से बहुतेरों को याद होगी *सावित्री* की वह प्रसिद्ध पंक्ति, जिसे तुमने माँ के अधरों से सुना है :

"स्वर्ण मीनार बन गयी है, अग्निशिखा-शिशु का जन्म हो गया है।"

उन्होंने नव जीवन की यह मीनार बना दी है और वह शिशु यहाँ पर है, स्वर्णिम शिशु। यह स्वर्णिम शिशु तुममें से प्रत्येक के अन्दर है। तुम्हें उसे ढूँढ़ना होगा, पहचानना होगा, वही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य है; पृथ्वी पर तुम जो करना और होना चाहते हो, वह उसका ध्येय और उसकी परिपूर्णता है। तुममें से कुछ ने अवश्य ही अपने अन्दर इस शिशु की उपस्थिति का अनुभव किया होगा। कुछ ने उसे अपने अन्दर **दिव्य शिशु** के रूप में देखा होगा। ये वस्तुएँ जिन्हें ईश्वरीय भेंट कहा जाता है—सामान्यतः सपनों में आती हैं। मैं कम-से-कम कुछ को जानता हूँ जिन्होंने इसे देखा है और मुझे अपने चमत्कारी अनुभव के विषय में बतलाया है। यह प्रत्येक के लिए एक सम्भावना है और अगर तुम उसे देख पाते हो, तुम्हें उसे पहचानना होगा, समस्त प्रेम और स्नेह से पकड़ रखना और ग्रहण करना होगा। माँ अभी भी हमारे मध्य में जीवित और कार्यरत हैं और उनकी उपस्थिति अब भी यहाँ है, यहाँ तक कि ठोस रूप में है, क्योंकि तुममें से प्रत्येक के अन्दर **दिव्य शिशु** है।

मैं एक प्रार्थना के साथ समाप्त करता हूँ, एक प्रार्थना जो मैंने कुछ समय पहले माँ से की थी; यह हमारी क्रीड़ाभूमि के छोटे बच्चों की ओर से है :

"मधुर माँ, तुम्हारी क्रीड़ाभूमि के बच्चे देवदूत हैं; वे दिव्य या दैवी बने

नहीं हैं, वरन् वे देवदूत हैं, पार्थिव देवदूत। उन्हें हमेशा अपनी आँखों-तले रखिये, उन्हें अपनी प्रेममयी चेतना की गोद में झुलाइये।"

तुम्हारी ओर से मैंने **माँ** से यही प्रार्थना की थी, और मुझे विश्वास है कि **माँ** ने प्रत्युत्तर में हाँ कहा।

नवम्बर १९७३ में प्रकाशित —श्रीनलिनीकान्त गुप्त

स्वर्णिम ज्योति

*तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे **मस्तिष्क** में हुआ अवतरण*
और मन के धुँधले कक्ष हो गये सूर्यायित
प्रज्ञा के तान्त्रिक तल के लिए एक उत्तर प्रसन्न,
एक शान्त प्रदीपन और एक प्रज्वलन।

*तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे **कण्ठ** में हुआ अवतरण,*
और मेरी सम्पूर्ण वाणी है अब एक दिव्य धुन,
मेरा अकेला स्वर तेरा स्तुति-गान;
अमर्त्य की मदिरा में उन्मत्त हैं मेरे वचन।

*तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे **हृदय** में हुआ अवतरण*
मेरे जीवन को तेरी शाश्वतता से करता आक्रान्त;
अब यह बन गया है तुझसे अधिष्ठित एक देवालय
और इसके सब भावावेगों का केवल तू एक लक्ष्य।

*तेरे स्वर्णिम प्रकाश का मेरे **पैरों** में हुआ अवतरण :*
मेरी धरती है अब तेरी लीलाभूमि और तेरा आयतन।

CWSA खण्ड २, पृ. ६०५ **श्रीअरविन्द**

... तुम्हारे अन्दर यह इच्छा होनी चाहिये कि प्रकाश तुम्हारे अँधेरे भौतिक मन में आये, और तुम्हें शान्ति के साथ इस अभीप्सा तथा इच्छा के परिणाम की प्रतीक्षा करनी चाहिये। **श्रीमाँ**

सद्‌गुणों के उत्सव में

(छोटे-बड़े सभी के लिए एक कहानी)

एक समय की बात है। एक भव्य महल था, जिसके बीचोबीच एक गुप्त मन्दिर था। किन्तु आज तक उसकी देहली भी किसी ने पार नहीं की थी। और तो और, उसकी बाहरी चहारदीवारी तक भी पहुँचना मर्त्य प्राणियों के लिए प्रायः असम्भव था, क्योंकि महल ऊँचे बादलों पर खड़ा था और आदिकाल से विरले ही वहाँ का मार्ग ढूँढ़ने में समर्थ हुए थे।

यह था 'सत्य' का महल।

एक दिन, वहाँ एक उत्सव का आयोजन हुआ, मनुष्यों के लिए नहीं, बल्कि उनसे अत्यन्त भिन्न प्रकार की सत्ताओं के लिए। इसमें वे छोटे-बड़े देवी-देवता आमन्त्रित थे जो इस पृथ्वी पर 'सद्‌गुणों' के नाम से पूजे जाते हैं।

उस महल के बाहरी भाग में एक बहुत बड़ा कक्ष था। उसकी दीवारें, फ़र्श और छत स्वयं प्रकाशमान थीं, तिस पर हज़ारों अग्नि-स्फुलिंगों से और भी जगमगा रही थीं।

यह था 'बुद्धि का महाकक्ष'। यहाँ फ़र्श के पास प्रकाश बहुत हलका था, नीलमणि के रंग का अति सुन्दर गहरा नीला रंग छत की ओर अधिकाधिक तेज़ होता गया था। छत में हीरों के शमादान झाड़-फ़ानूसों की तरह लटके हुए थे। उनके हज़ारों मुखों से आँखों को चौंधियाने वाली किरणें चारों ओर फूट रही थीं।

सद्‌गुण अलग-अलग आये पर शीघ्र ही अपनी-अपनी रुचि के अनुसार टोलियाँ बना कर बैठ गये। सभी प्रसन्न थे कि आज ऐसा दिन आया जब वे एक बार तो इकट्ठे हो सके। वे साधारणतः इस जगत् में और अन्य जगतों में बिखरे रहते हैं, परायों की भीड़ में छितरे रहते हैं।

इस उत्सव की अध्यक्षता की 'दिल की सच्चाई' ने जिसका वेश जल के समान निर्मल था, उसके हाथों में एक घनाकार, अति विशुद्ध स्फटिक था। उस स्फटिक से वस्तुएँ वैसी दिखलायी देती थीं जैसी वे वास्तव में थीं, जैसी वे साधारणतया प्रतीत होती हैं उससे सचमुच में बहुत ही भिन्न, क्योंकि उसमें वस्तुएँ हूबहू, बिना किसी विकृति के प्रतिबिम्बित होती थीं।

उसके पास ही दो मूर्तियाँ विश्वस्त अंगरक्षकों की तरह खड़ी थीं; एक

थी 'विनम्रता', उसका भाव आदरपूर्ण और साथ ही गर्वीला था, और दूसरी ओर उन्नत ललाट, उज्ज्वल चक्षु, दृढ़ हास्यपूर्ण अधर, प्रशान्त, निश्चिन्त भंगिमावाला 'साहस' था। 'साहस' के समीप, उसके हाथ में हाथ डाले, बुरके में लिपटी एक नारी खड़ी थी। केवल उसकी तीक्ष्ण आँखें ही घूँघट को भेद कर चमकती हुई दीख पड़ती थीं। वह थी 'सावधानता'।

सबके बीच एक-दूसरे के पास आती-जाती, फिर भी हर समय सबके निकट दीखती थी 'उदारता'—एक ही साथ सतर्क एवं शान्त, कर्मरत एवं विवेकपूर्ण। उस समूह में वह जिधर निकल जाती उधर ही अपने पीछे उज्ज्वल मृदु प्रकाश की रेखा छोड़ती जाती थी। यह प्रकाश जो उससे छिटक कर विकीर्ण हो रहा था वास्तव में उसे अपनी श्रेष्ठ सखी, चिर सहचरी और जुड़वाँ बहन 'न्यायपरता' से मिल रहा था, किन्तु वह उसके पास सूक्ष्म रूप में, अधिकतर दृष्टियों से ओझल रह कर आ रहा था।

'दया', 'धैर्य', 'सौम्यता', 'अनुकम्पा' और ऐसे अनेकों की उज्ज्वल सेना 'उदारता' को घेरे हुए थी।

सभी आ चुके थे। कम-से-कम सबकी ऐसी धारणा थी।

किन्तु यह लो, वह कौन है? स्वर्ण-द्वार पर हठात् एक नवागन्तुक!

द्वार पर नियुक्त द्वारपालों ने बड़ी कठिनाई से उसे अन्दर आने दिया था। न तो उन्होंने उसे कभी पहले देखा था और न ही उसकी आकृति में उन्हें कोई प्रभावशाली चीज़ लगी।

वह सचमुच बहुत कम उम्र की थी, उसकी देह दुबली-पतली और सफ़ेद पोशाक साधारण, बल्कि ग़रीब जैसी थी। वह डरती-सी, झिझकती-सी कुछ डग आगे बढ़ी। पर स्पष्ट ही वह अपने को ऐसी वैभवशाली उज्ज्वल भीड़ के बीच पाकर खो-सी गयी। वह ठिठक गयी, उसे पता न था कि किसकी ओर जाये।

उधर 'सावधानता' अपने साथियों से कुछ परामर्श करके उनके अनुरोध पर अनजाने मेहमान की ओर बढ़ी। वह ज़रा गला साफ़ करके, जैसा कि दुविधा में पड़े लोग थोड़ा सोचने के लिए करते हैं, उसकी ओर अभिमुख होकर बोली: "हम सब जो इस महल में इकट्ठे हुए हैं एक-दूसरे के नाम और गुण जानते हैं। आपको आते देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप हमें विदेशी-सी प्रतीत हो रही हैं। कम-से-कम ऐसा नहीं लगता कि

आपको पहले कभी देखा हो। क्या आप यह बताने की कृपा करेंगी कि आप कौन हैं?"

नवागता ने लम्बी साँस लेते हुए उत्तर दिया: "हाय! मुझे आश्चर्य नहीं कि मुझे इस प्रासाद में विदेशी माना जा रहा है, क्योंकि मैं कदाचित् ही कहीं आमन्त्रित होती हूँ।

"मेरा नाम है 'कृतज्ञता'।"

'श्रीमातृवाणी' खण्ड २, पृ. ६-८

साधक के लिए एक प्रार्थना

मुझे मेरे क्रोध से, अकृतज्ञता और मूर्खताभरे दर्प से मुक्त कर। मुझे शान्त, विनम्र और कुलीन बना। वर दे कि मैं अपने कर्म में और अपनी सभी गतिविधियों में तेरे ही दिव्य नियन्त्रण का अनुभव करूँ।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं सभी हठधर्मिता और स्वाग्रही-भाव से मुक्त हो जाऊँ ताकि मैं श्रीमाँ का विनीत तथा आज्ञाकारी सेवक बन सकूँ, उनके कार्य के लिए उपयुक्त यन्त्र बन सकूँ और मैं प्रार्थना करता हूँ प्रभो, कि मैं जो कुछ करूँ उनके प्रति समर्पित होकर करूँ और सदैव उनका पथ-प्रदर्शन पाता रहूँ।

प्रभो, वर दे कि आज से मैं एक सुदृढ़ निश्चय के साथ अपने अन्दर से सभी भूलों और दोषों को निकाल बाहर फेंक दूँ और वर दे कि मैं इस कार्य में ऊर्जा तथा अध्यवसाय के साथ तब तक लगा रहूँ जब तक कि मैं इसमें पूरी तरह से सफल न हो जाऊँ। वर दे कि मैं समस्त घमण्ड, झगड़ालू-प्रवृत्ति, आत्म-अहंकार और दर्प से पिण्ड छुड़ा लूँ; वर दे कि मैं श्रीमाँ का विरोध कभी न करूँ, हमेशा उनकी आज्ञा का पालन करूँ; वर दे कि मैं न कभी दूसरों से ईर्ष्या करूँ न विद्वेष; अपशब्द, अभद्र व्यवहार, मिथ्यात्व, आत्म-ख्याति, माँग, असन्तोष और शिकायत के चंगुल से निकल जाऊँ। वर दे कि मैं सबके साथ मैत्री का व्यवहार करूँ, किसी के भी प्रति कभी दुर्भावना न रखूँ।

प्रभो, वर दे कि मैं श्रीमाँ का सच्चा बालक बन सकूँ।

श्रीअरविन्द के पत्रों से

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

कृतज्ञता

तुम ही हो जो सभी बन्द द्वारों को खोल देती हो
और रक्षा करने वाली 'भागवत कृपा' को प्रवेश करने देती हो।

जापान के बारे में

(जापान में दिया गया माँ का एक भाषण)

आपने जापान के बारे में मेरे विचार माँगे हैं। जापान के बारे में लिखना एक कठिन काम है। वहाँ के बारे में इतनी सारी चीज़ें लिखी जा चुकी हैं, बहुत-सी ऊट-पटाँग चीज़ें भी... लेकिन ये ज़्यादातर देश नहीं, देशवासियों के बारे में हैं। वह देश ऐसा अद्‌भुत, सुरम्य, बहुमुखी, मनोहर, अप्रत्याशित, जंगली या मधुर है! वह देखने में—उत्तरध्रुवीय ठण्डे प्रदेशों से लेकर उष्ण कटि-प्रदेशीय प्रदेशों तक—दुनिया-भर के सभी देशों का समन्वय लगता है। किसी कलाकार की आँख उसकी ओर से उदासीन नहीं रह सकती। मेरा ख़याल है कि जापान के बहुत-से सुन्दर वर्णन किये जा चुके हैं; मैं अपनी ओर से उनमें एक और नहीं बढ़ा रही, मेरा वर्णन निश्चित रूप से उनकी अपेक्षा बहुत कम रोचक होगा। लेकिन आमतौर पर जापानियों को ग़लत समझा गया है और ग़लत रूप में पेश किया गया है और इस विषय पर कहने-लायक कुछ कहा जा सकता है।

अधिकतर विदेशी लोग जापानियों के उस भाग के सम्पर्क में आते हैं जो विदेशियों के संसर्ग से बिगड़ चुका है—ये पैसा कमाने वाले, पश्चिम की नकल करने वाले जापानी हैं। वे नकल करने में बहुत चतुर हैं और उनमें ऐसी काफ़ी सारी चीज़ें हैं जिनसे पश्चिम के लोग घृणा करते हैं। अगर हम केवल राजनेताओं, राजनीतिज्ञों और व्यापारियों के जापान को देखें तो यही लगेगा कि यह यूरोप के शक्तिशाली देशों से बहुत ज़्यादा मिलता-जुलता देश है, लेकिन उसमें ऐसे देश की जीवनी शक्ति और घनीभूत ऊर्जा भरी है जो अभी तक अपनी पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचा है।

यह ऊर्जा जापान की एक बहुत मज़ेदार विशेषता है। वह हर जगह, हर एक बूढ़े, बच्चे, मर्द, औरत, विद्यार्थी, मज़दूर, सभी के अन्दर दिखायी देती है। शायद "नये अमीरों" को छोड़ कर सभी के जीवन में अद्‌भुत घनीभूत ऊर्जा का भण्डार दिखायी देता है। प्रकृति और सौन्दर्य के आदर्श प्रेम के साथ-ही-साथ यह सञ्चित शक्ति भी जापानियों की विशिष्ट और सबसे अधिक व्यापक विशेषता है। उदयाचल के उस प्रदेश में पाँव रखते ही आप इस चीज़ को देख सकते हैं, जहाँ इतने सारे लोग और इतनी

निधियाँ एक छोटे-से टापू में जमा हैं।

यदि आपको उन जापानियों से मिलने का सुअवसर मिले, जैसा कि हमें मिला था, जिनमें अभी तक प्राचीन सामुराई का शौर्य और आभिजात्य अछूता है तो आप समझ सकते हैं कि सच्चा जापान क्या है, आप उनकी शक्ति के रहस्य को पा सकते हैं। वे चुप रहना जानते हैं और यद्यपि उनमें बहुत अधिक तीव्र संवेदनशीलता होती है, लेकिन मैं जिन लोगों से मिली हूँ उनमें ये सबसे कम इसका प्रदर्शन करने वाले लोग हैं। यहाँ एक मित्र तुम्हारे प्राण बचाने के लिए बड़ी ही सरलता से अपनी जान दे सकता है; लेकिन वह कभी तुम्हारे सामने यह न कहेगा कि उसे तुम्हारे लिए इतना गहरा और निःस्वार्थ प्रेम है। वह इतना तक भी नहीं कहेगा कि वह तुमसे प्रेम करता है। और अगर तुम बाहरी आभासों के पीछे छिपे हुए हृदय को न पढ़ सको तो तुम्हें बहुत अच्छे बाह्य शिष्टाचार के सिवाय कुछ न दिखायी देगा जिसमें सहज भावों के लिए कोई स्थान नहीं होता। फिर भी भाव होते हैं और बाहर अभिव्यक्त न होने के कारण और भी ज़्यादा प्रबल होते हैं और यदि कभी मौका आ जाये तो उनके किसी काम द्वारा अचानक प्रेम की गहराई का पता चलता है, वह भी विनयशील और कई बार छिपा हुआ। यह जापानी विशेषता है। संसार की जातियों में सच्चे जापानी, जो पश्चिम के प्रभाव में नहीं आये हैं, शायद सबसे कम स्वार्थी होते हैं। और यह निःस्वार्थता पढ़े-लिखे, विद्वान् या धार्मिक लोगों की ही विशेषता नहीं है। यह समाज के सभी स्तरों में पायी जाती है। यहाँ कुछ लोकप्रिय और अत्यन्त मनोहर उत्सवों को छोड़ कर धर्म रूढ़ि या सम्प्रदाय नाम की चीज़ नहीं है। यह उनके दैनिक जीवन में आत्म-त्याग, आज्ञा-पालन और आत्म-समर्पण के रूप में दिखायी देता है।

जापानियों को बचपन से ही सिखाया जाता है कि जीवन कर्तव्य है, सुख नहीं। वे उस कर्तव्य को स्वीकार करते हैं। प्रायः कठोर और कष्टकर कर्तव्य को सहनशील आत्म-समर्पण के साथ स्वीकार करते हैं। वे अपने-आपको सुखी बनाने के विचार से परेशान नहीं करते। यह सारे देश के जीवन को आनन्द और मुक्त अभिव्यक्ति नहीं, एक असाधारण आत्म-नियन्त्रण प्रदान करता है। यह तनाव, प्रयास और मानसिक तथा स्नायविक दबाव का वातावरण पैदा करता है, उस तरह की आत्मिक शान्ति नहीं

देता जैसी, उदाहरण के लिए, भारत में अनुभव की जा सकती है। वास्तव में, जापान में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसकी तुलना भारत में व्याप्त शुद्ध भागवत वातावरण से की जा सके। यह वातावरण ही भारत देश को ऐसा अनोखा और बहुमूल्य बनाता है। जापान के मन्दिरों में, वहाँ के पवित्र दुर्गम मठों में, जो कभी-कभी ऊँचे पर्वत की चोटी पर बने होते हैं, बड़े-बड़े देवदारु के पेड़ों से ढके होते हैं, जो नीचे की दुनिया से बहुत दूर हैं, उनमें भी यह वातावरण नहीं है। वहाँ बाहरी नीरवता है, विश्राम और निश्चलता है, लेकिन शाश्वत का वह आनन्दमय संवेदन नहीं है जो एकमेव की जीवन्त सन्निधि से आता है। यह सच है कि यहाँ सब कुछ एकता के मन और आँखों को सम्बोधित करता है—मनुष्य की भगवान् से एकता, प्रकृति की मनुष्य से एकता और मनुष्य-मनुष्य की एकता से। लेकिन यह एकता कम ही अनुभव की जाती है या जीवन में उतारी जाती है। निश्चय ही, जापानियों में उदार आतिथ्य, पारस्परिक सहायता, पारस्परिक अवलम्ब की भावना बहुत विकसित है। लेकिन अपने संवेदनों, विचारों और सामान्य क्रियाओं में यह सबसे अधिक व्यक्तिवादी और पृथकतावादी जाति है। इन लोगों के लिए रूप प्रधान है, रूप आकर्षक है। वह अभिव्यञ्जक भी होता है। वह किसी अधिक गहरे सामञ्जस्य या सत्य, प्रकृति या जीवन के किसी विधान की कहानी कहता है। प्रत्येक रूप, प्रत्येक क्रिया, बग़ीचे की व्यवस्था से लेकर प्रसिद्ध चाय-समारोह तक, प्रतीकात्मक है, और कभी-कभी एक बहुत ही सादी और सामान्य चीज़ में एक गहरा, अलंकृत, इच्छित प्रतीक मिल जाता है जिसे अधिकतर लोग जानते और समझते हैं। लेकिन यह जानना और समझना केवल बाहरी और परम्परागत होता है। वह आध्यात्मिक अनुभवों से आने वाला जीवन्त सत्य नहीं होता जो दिल और दिमाग़ को प्रबुद्ध करे। जापान मौलिक रूप में संवेदनों का देश है। वह अपनी आँखों के द्वारा जीता है। उस पर सौन्दर्य का एकछत्र राज्य है और उसका वातावरण मानसिक और प्राणिक क्रिया-कलाप, अध्ययन, निरीक्षण, प्रगति और प्रयास को उत्तेजित करता है, लेकिन शान्त, आनन्दमय चिन्तन-मनन को नहीं। लेकिन इस सारे क्रिया-कलाप के पीछे एक उच्च अभीप्सा उपस्थित है जिसे उस जाति का भविष्य ही व्यक्त करेगा।

९ जुलाई १९१७ **श्रीमातृवाणी**, खण्ड २, पृ. १६९-७१

जापान में श्रीमाँ

कठिनाई में श्रीमाँ की सहायता पाने का गुर

समस्त बाह्य रूपों के पीछे होने वाली श्रीमाँ की क्रिया में तुम्हें अटल विश्वास बनाये रखना चाहिये, और फिर तुम देखोगे कि वह विश्वास तुम्हें पथ पर सीधे लिये जा रहा है।

३१ अगस्त १९३५

कोई व्यक्ति केवल अपनी ही शक्ति या अच्छे गुणों के द्वारा दिव्य रूपान्तर नहीं प्राप्त कर सकता; केवल दो चीज़ें हैं जिनका मूल्य है : कार्य करने वाली माँ की शक्ति और उनकी ओर खुले रहने का साधक का संकल्प तथा उनकी क्रिया पर अटल विश्वास। अपने संकल्प और विश्वास को बनाये रखो और बाक़ी चीज़ों की परवाह मत करो—वे केवल ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो साधना में सबके सामने आती हैं।

१३ मई १९३६

श्रीमाँ कभी भविष्य की कठिनाइयों, पतनों या विपत्तियों की बात नहीं सोचतीं। उनका ध्यान सर्वदा एकाग्र होता है प्रेम और प्रकाश पर, कठिनाइयों और अधःपतनों पर नहीं।

*

माँ उच्चतर सद्वस्तु को जगत् में लाती हैं—उसके बिना बाक़ी सब कुछ अज्ञानपूर्ण और मिथ्या है। ३ अगस्त १९३४

एक बार जब व्यक्ति योगमार्ग में प्रवेश कर जाता है तब उसे केवल एक ही चीज़ करनी होती है—उसे दृढ़ता के साथ यह निश्चय करना होता है कि चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, चाहे जो भी कठिनाइयाँ क्यों न उठ खड़ी हों, मैं अन्त तक अवश्य जाऊँगा। सच पूछा जाये तो कोई भी मनुष्य अपने निजी सामर्थ्य के द्वारा योग में सिद्धि नहीं प्राप्त करता—सिद्धि तो उस महत्तर शक्ति के द्वारा आती है जो तुम्हारे ऊपर आसीन है—और समस्त उतार-चढ़ावों में से गुज़रते हुए, लगातार उस शक्ति को पुकारते रहने से ही वह सिद्धि आती है। उस समय भी, जब कि तुम सक्रिय रूप से अभीप्सा

नहीं कर सकते, सहायता के लिए श्रीमाँ की ओर मुड़े रहो—यही एकमात्र चीज़ है जिसे सर्वदा करना चाहिये।

३ जनवरी १९३४

बस आवश्यकता है अध्यवसाय की—निरुत्साहित हुए बिना आगे बढ़ते जाने की और यह स्वीकार करने की कि प्रकृति की प्रक्रिया तथा श्रीमाँ की शक्ति की क्रिया कठिनाई के अन्दर से भी काम कर रही है और जो कुछ आवश्यक है उसे करेगी। हमारी अक्षमता से कुछ नहीं आता-जाता—एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो अपनी प्रकृति के भागों में अक्षम न हो—पर भगवती शक्ति भी विद्यमान है। अगर कोई उस पर विश्वास रखे तो अक्षमता क्षमता में परिवर्तित हो जायेगी। उस समय स्वयं कठिनाई और संघर्ष भी सिद्धि प्राप्त करने के साधन बन जाते हैं।

२७ मई १९३६

अपनी कठिनाइयों पर सोच-विचार मत करते रहो। उन्हें माँ पर छोड़ दो और उनकी शक्ति को अपने अन्दर कार्य करने दो जिससे वह उन्हें तुम्हारे अन्दर से निकाल बाहर कर दे।

२२ मार्च १९३५

इस विचार को कभी आने और अपने को परेशान मत करने दो कि "मैं समर्थ नहीं हूँ, मैं यथेष्ट प्रयास नहीं करता हूँ।" यह एक तामसिक सुझाव है जो अवसाद ले आता है और फिर अवसाद अनुचित शक्तियों के आक्रमण के लिए दरवाज़ा खोल देता है। तुम्हारी स्थिति तो यह होनी चाहिये कि "जो कुछ मैं कर सकूँगा वह करूँगा; माँ की शक्ति, स्वयं भगवान् यह देखने के लिए मौजूद हैं कि समुचित समय के अन्दर सब कुछ कर दिया जाये।"

४ नवम्बर १९३५

उचित मनोभाव है घबराना नहीं, शान्त-स्थिर बने रहना और विश्वास बनाये रखना; पर साथ में यह भी आवश्यक है कि श्रीमाँ की सहायता ग्रहण की जाये और किसी भी कारण से उनकी शुभ-चिन्ता से पीछे न हटा

जाये। हमें कभी असमर्थता, प्रत्युत्तर देने की अयोग्यता के विचारों में नहीं लगे रहना चाहिये, दोषों और असफलताओं पर अत्यधिक ध्यान नहीं देना चाहिये और इन सबके कारण मन को दुःखी और लज्जित नहीं होने देना चाहिये; क्योंकि ये विचार और बोध अन्त में कमज़ोर बनाने वाली चीज़ें बन जाते हैं। अगर कठिनाइयाँ हैं, ठोकरें लगती हैं या असफलताएँ आती हैं तो उन्हें शान्त-स्थिर रह कर देखना चाहिये और उन्हें दूर करने के लिए शान्ति के साथ, निरन्तर भागवत सहायता को पुकारना चाहिये, लेकिन कभी विचलित या दुःखी या निरुत्साहित नहीं होना चाहिये। योग कोई सहज पथ नहीं है और प्रकृति का सर्वांगीण परिवर्तन एक दिन में नहीं किया जा सकता।

२७ मई १९३१

इस सबका कुछ लाभ नहीं—इस प्रकार की शिकायतों, शंकाओं आदि को ताक पर धर दो। तुम्हें उदास या विचलित हुए बिना, माँ की शक्तियों को ग्रहण करते हुए, उन्हें कार्य करते देते हुए, जो कुछ उनके मार्ग में आड़े आये उस सबको दूर फेंकते हुए, पर अपनी किसी कठिनाई या दोषों से अथवा माँ की क्रिया में किसी प्रकार के विलम्ब या धीमेपन से विचलित हुए बिना, शान्त भाव से आगे बढ़ते जाना है।

२५ अक्तूबर १९३३

निराशा या अधीरता के इन सुझावों को अपने अन्दर मत घुसने दो। माँ की शक्ति को कार्य करने के लिए समय दो।

१२ जून १९३७

इस प्रकार का दुःख-शोक और निराशा सबसे बुरी बाधाएँ हैं जिन्हें मनुष्य अपनी साधना में खड़ा कर सकता है—इनमें कभी संलग्न नहीं होना चाहिये। मनुष्य स्वयं जिसे नहीं कर सकता उसे वह माँ की शक्ति को पुकार कर उससे करा सकता है। उसी को ग्रहण करना और उसे अपने अन्दर करने देना साधना में सफलता पाने का सच्चा तरीक़ा है।

*

निरुत्साहित होने का कोई कारण नहीं है। प्रकृति की तैयारी के लिए तीन वर्ष का समय बहुत अधिक नहीं है। प्रकृति साधारणतया उत्थान-पतन से होती हुई धीरे-धीरे उस अवस्था के समीप पहुँचती है जहाँ निरन्तर उन्नति करना सम्भव हो जाता है। समस्त बाहरी रूपों के पीछे होने वाली श्रीमाँ की क्रिया के प्रति अपने विश्वास से दृढ़तापूर्वक चिपके रहना चाहिये और तब तुम देखोगे कि वह तुम्हें कठिनाइयों से बचा ले जायेगी।

३१ अगस्त १९३५

क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है कि जब कठिनाइयाँ दूर नहीं होतीं तब भी माँ की कृपाशक्ति कार्य करती रहती है?

उस अवस्था में तो प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है, "मेरी सभी कठिनाइयाँ तुरन्त दूर हो जानी चाहियें, मुझे तुरत-फुरत और बिना किसी कठिनाई के पूर्णता प्राप्त कर लेनी चाहिये, अन्यथा यह बात सिद्ध हो जाती है कि माँ की कृपा मेरे ऊपर नहीं है।"

२० जुलाई १९३३

तुम्हें निराशा के इन सभी भावों को दूर फेंक देना चाहिये। ऐसी उदासी तुम्हें उस चीज़ की ओर से बन्द कर देगी जो माँ तुम्हें दे रही हैं। ऐसे मनोभाव के लिए कोई भी समुचित कारण नहीं है। कठिनाइयों का होना योग-जीवन की एक जानी-मानी बात है। अन्तिम विजय या भागवत कृपा की कार्यकारिता पर सन्देह करने का यह कोई कारण नहीं।

४ फ़रवरी १९३३

मन की शान्ति को एकसमान और निरन्तर बनाये रखने के लिए प्राण के अन्दर जो भाग अभी चञ्चल है उसे स्थिर-अचञ्चल बनाना होगा। उसे संयमित तो करना होगा, पर केवल संयम ही पर्याप्त नहीं। श्रीमाँ की शक्ति को सर्वदा पुकारना होगा। १० अप्रैल १९३४

'माताजी के विषय में' पुस्तक से **श्रीअरविन्द**

माँ जाग उठी है

('पुरोधा' अगस्त १९८५ का 'सम्पादकीय' आज भी कितना मायने रखता है। तब जो जगत् था, आज जो जगत् है, कोई अन्तर है??... मानवजाति को चेताने के लिए माँ का वही समान रूप फिर-फिर जाग उठता है—सं.)

ईश्वर की लीला अपरम्पार है, भागवत में कहा गया है कि कलियुग में अँधेरा सबसे अधिक घना होता है। घने अँधेरे के युग में यदि व्यक्ति थोड़ा-सा भी पुण्य करे तो उसका असर भी सत्ययुग में किये गये पुण्य से कहीं अधिक व्यापक और प्रभावशाली होता है क्योंकि सत्ययुग तो सत्यम्-ऋतम् का उषा-काल है, उसमें किया गया सत्कर्म भी महान् होना चाहिये।

आज का युग कलियुग है। सूखा, बाढ़, आगज़नी, हत्या, जघन्य बम-विस्फोटों और नाना प्रकार के कुकर्मों में भीषण कलि का ही क्रूर अट्टहास सुनायी दे रहा है, आज प्राणी-मात्र अपनी जान हथेली पर लिये है, न मालूम कब, किस दिशा से अकाल मृत्यु के खूँखार पंजे उसे क्षत-विक्षत कर दें। प्रकृति आतंकित हो उठी है, मानव त्राहि-त्राहि कर उठा है, कैसे परित्राण पाये?

परित्राण इसी कलियुग में है। अन्धकार जितना घना छा रहा है, प्रकाश भी उतनी ही तीव्रता के साथ उसमें छिपा हुआ है, तभी तो आर्ष वाणी हमेशा से यही कहती आयी है कि ऐसे समय किया गया ज़रा-सा पुण्य भगवान् की कृपा की अनन्त वृष्टि लाने में समर्थ है।

आज पृथ्वी पर मनुष्य अपने अहंकार में इतना फूल उठा है कि वह समझने लगा है कि प्रकृति पर उसने पूरी तरह से अधिकार कर लिया है, अब वह प्रकृति को अपने इशारों पर नचाने की कोशिश में रात-दिन जुटा रहता है, माँ प्रकृति भी अपनी सन्तान की धृष्टता को सहती जाती है, लेकिन जब-जब उसका गर्व अति को लाँघने को तत्पर हो उठता है, तब माता उसे छोटा-मोटा पाठ सिखा देती है और मनुष्य एक बार फिर प्रकृति के सामने अपने-आपको बौना पाता है। लेकिन जो एक बार में सीख जाये वह मनुष्य कहाँ, फिर-फिर उसका दम्भ सिर उठा-उठा कर माता को चुनौती देने के लिए उठ खड़ा होता है, माँ हँस कर कभी प्यार में हलकी-सी तो

कभी ज़रा करारी चपत लगा देती है...

लेकिन कभी-कभी कार्य को तेज़ी से करने के लिए माँ भगवती का महाकाली-रूप सामने आता है, और तब एक सिरे से सफ़ाई का अभियान शुरू हो जाता है, हर तरफ़ का मलबा और गन्दगी निकाली जाती है, मनुष्य का सीमित मस्तिष्क इस मार्ग के पीछे की महानता को नहीं जान पाता और वह हाहाकार कर उठता है, लेकिन उसके हृदय में इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि यह परम प्रभु की सृष्टि है, अन्ततः मनुष्य नहीं वे ही इसे चला रहे हैं, ऊपरी दृष्टि में चाहे कितना भी विनाश क्यों न दीखे, हर विनाश के अन्दर से नूतन सृजन की आनन्दमयी सृष्टि झाँक रही है। पुरातन का काल समाप्त हो गया है। रो-झींक कर दे या हँसी-ख़ुशी, उसे अब नूतन को स्थान देना होगा। नयी सृष्टि को आने से कोई नहीं रोक सकता।

आज कलियुग का, यानी पुरातन का प्रकोप चरमोत्कर्ष पर दीखता जान पड़ता है—कितना शगुन-सूचक चिह्न है यह अपने-आपमें। आज माँ जाग उठी है—यहाँ श्रीअरविन्द के ही शब्दों में सुनिये माँ के इस जागने का वर्णन—

"रात आधी हो चुकी है। संसार नीरवता में सोया पड़ा है। धरती अन्धकार की गोद में सोयी पड़ी है और सोया पड़ा है स्वर्ग। क्रुद्ध मरुत दम रोके खड़े हैं। बादलों की घनी कालिमा में तारे भी टिमटिमाते नहीं दीखते। पक्षी अपने पंखों से आँखों को ढके, अपने-आपमें खोये हुए अपने-अपने नीड़ में पड़े हैं। पशु का चलना-फिरना बन्द है, किसी की पगध्वनि नहीं सुनायी देती। ऐसे में दिव्य जननी जाग उठती है, जननी एक भयंकर निनाद के साथ जाग उठती है, जननी जाग उठती है और सूर्य-जैसे दो भयावह नेत्र खोलती है।

"माँ जाग पड़ी है। एक पत्ता भी नहीं हिल रहा। कमरे के अन्दर दीपक की अकम्पित ज्वाला गुल होने की तैयारी में है। नगर के सूने पथों पर, खेतों, जंगलों और पहाड़ियों में जीवन-मात्र निद्रा में डुबकी लगाये हुए है। सागर के जलों की लहरें तट पर खिलखिलाती हुई नहीं आतीं। एकदम नीरव, निश्चल सागर मौन और निःशब्द है। तब माँ क्यों जाग उठी है? कौन कह सकता है कि उसने ऐसा क्या सुना जिसने उसे जगा दिया है।

किसकी मौन पुकार ने जननी को इस घोर निशा में भी जगा दिया और वह भयंकर निनाद करती हुई जाग उठी है।

"माँ की शयन-वेला में किसने सोचा था कि वह इस अन्धी-काली रात में इस तरह जाग उठेगी। रात्रि के अन्धकार में डूबा हुआ, आशा से वञ्चित, सदा-सर्वदा के लिए भग्न-हृदय, अपनी निद्रा में भी, गिरते हुए पत्ते की आवाज़ से चौंक पड़ता है। महान् असुर की राजसी नियति ने, गौरवपूर्ण, कुटिल, सर्वविजयी नियति ने धरती को घेर लिया है। और अचानक भयंकर निनाद सुनायी देता है, अचनाक माँ की आवाज़ में सैकड़ों समुद्रों का गर्जन भर जाता है, अपने नींद के माते बालकों को जगाने के लिए माँ इन्द्र-वज्र का-सा गर्जन कर रही है।

"इस अँधेरी अर्धरात्रि में क्या कोई भी ऐसा नहीं है जो दुःख-भरे, उछलते हृदय के साथ माँ के लिए जाग रहा हो। कुछ इने-गिने काषाय वस्त्रधारी, प्रचण्ड माँ के भक्त, हाथ में नग्न खड्ग लिये, माँ के चरणों का अपने लोहित रक्त से अभिषेक करने के लिए अपलक बैठे रात की घड़ियाँ गिन रहे हैं। महान् तृष्णा के साथ, क्रुद्ध गर्जन करती हुई माँ जाग उठी है और समस्त विश्व को अपने सिंहगर्जन से आप्लावित करते हुए जगत् को जगा रही है।

"उसके मुख से एक कर्कश अट्टहास्य निकल रहा है, उसकी आँखों में से बिजलियाँ चमक रही हैं, उसके क्रोध का रक्त जपा-कुसुम बड़ा ही भयानक है। कोप में भरी हुई जननी अपने हाथों में दो दानवों के मुण्ड लिये झुला रही है। माँ उठती है और एक विकराल आह्वान करती है।

"अर्ध रात्रि में दो दानव मुण्डों को अपने हाथों में झुलाती हुई तुम कौन हो? तुम सारी धरती पर रक्त की बौछार कर रही हो। तुम्हारी दो आँखें आग की दो भट्टियों के समान हैं। भयानक माँ धरती को कँपाती हुई इधर-उधर घूम रही है। उठो, उठो की भयंकर दहाड़ के साथ माँ सभी देवों, दानवों और मनुष्यों को पुकार रही है, वह समस्त आलस्य और अकर्मण्यता को खदेड़ रही है, इस ओर भयंकर निनाद और उस ओर उल्लास-भरा गर्जन—यह मेरी माँ ही है। उसके मस्तक पर मृत्यु का जलता नेत्र दिखायी दे रहा है। मेरी माँ आ रही है, उसके गले में पड़ी मुण्डमाल ताल के साथ नाच रही है।

"भयंकर झंझा और युद्ध के बीच तलवार तलवार से टकराती है और शरीर शरीर के साथ बज उठता है। युद्ध में आग बरस रही है और इधर-उधर चक्कर लगा रही है। आकाश बधिर हो गया है, इस समस्त कोलाहल के बीच कान फटे जाते हैं और धरती डोल रही है, रक्त मुक्त रूप से नदी-नालों की तरह बह रहा है। तो कब, हाँ कब, हम माँ को जान पायेंगे!

"जब उसका समुद्र-घोष अपने एक श्वास से दानवों के राज्य को मटियामेट कर देगा और उग्र देवी मुस्कुराती हुई आयेगी, तब माँ को जान पायेंगे। जब माँ शोणित की नदियों में स्नान करती हुई नाच उठेगी तब हम जानेंगे कि आख़िर माँ जाग उठी है।"

—वन्दना

लक्ष्यबेध

लक्ष्यबेध किया था
निशाना साध कर
अर्जुन ने
ऊपर घूमती हुई, मछली की आँख का
नीचे रखे कुण्ड में उसकी प्रतिच्छाया देख कर

कुछ ऐसे ही
अपने अन्तस्
को लक्ष्य मान कर
उस तक निशाना साधना है
इस अस्थिर जगत् के
झिलमिल दर्पण में
अपने अन्तस् की
प्रतिच्छाया पर
ध्यान केन्द्रित कर।

'अन्तरा' से साभार *—श्री विश्वनाथ*

प्रशान्ति

... अगर कोई अपने मन में, अपने प्राण में, अपने भौतिक में, यानी, अपने सारे शरीर में—मांसपेशियों, ऊतकों तथा कोषाणुओं तक में निश्चल-नीरवता स्थापित कर सके तो शुद्धि का कार्य शुरू हो जाता है, जो सारे शरीर में एक शान्ति, पूर्ण प्रशान्ति ले आती है।

यह प्रशान्ति स्वयं को ज्योति और हर्ष के मिश्रण के साथ प्रकट करती है, मानों कोई बाधा ही न हो, और तब सब कुछ विशाल, सीमातीत, शरीरातीत बन जाता है—तुम मानों अपने शरीर के घेरे से निकल जाते हो—उस प्रशान्ति के साथ एक हो जाते हो जो ऊपर से उतरती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोषाणु विस्तृत हो रहे हैं, शरीर पूर्ण समता में पनप रहा है। तब सचमुच शान्ति हमारे अन्दर प्रतिष्ठित होती है।

इस शान्ति, इस निश्चल-नीरवता के प्रति खुलो और अपने अन्दर गहराई में एकाग्र होओ ताकि तुम उसका प्रभाव अनुभव कर सको। यह शान्ति तुम्हारी सत्ता के सभी भागों में फैल जाये, वे उसे आत्मसात् कर लें। जब धरती पर शान्ति उतरती है तो इसका अर्थ है कि 'सत्य' का अवतरण हुआ है, और तब सब कुछ आनन्दमय, उत्सवपूर्ण और शुद्ध रूप से दिव्य बन जाता है, मानों नवजन्म हुआ हो। और जब हम इस शान्ति में नहा लेते हैं तो निरन्तर हमारा नवजन्म होता रहता है।

और यह उदात्त उपस्थिति, जो धरती के वातावरण में निरन्तर कार्यरत है, इसका भव्य प्रभाव सर्वदा उपस्थित रहता है। इसकी उपस्थिति को अनुभव करने की कोशिश करो और भौतिक रूप से उसे अपने अन्दर आत्मसात् करो। यह प्रगति करने और स्वयं को शुद्ध करने का अच्छा तरीक़ा है।

शान्ति... शान्ति... जब तुम्हारी सत्ता में शान्ति स्वयं को प्रतिष्ठित कर ले तो वह एक ऐसी 'उपस्थिति' होती है जो सभी अपूर्णताओं को, उन सभी चीज़ों को तितर-बितर कर देती है जो तुम्हें बेचैन बनाते, तुम्हें उत्तेजित करते और तुम्हारी आन्तरिक अचञ्चलता में खलल डालते हैं। अन्तर्मुख होना इतनी ठोस अवस्था है कि कोई भी बाहरी घटना उसे छू तक नहीं पाती।

Throb of Nature पुस्तक से —मोना दा

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

(श्रीअरविन्द के वचनों का संकलन)

अप्रैल

१. प्रसन्नता अन्तरात्मा की सन्तुष्टि से प्राप्त होती है, प्राण की या शरीर की सन्तुष्टि से नहीं। प्राण कभी सन्तुष्ट नहीं होता; शरीर भी जो कुछ आसानी से या हमेशा पाता है उससे आकर्षित होना जल्दी ही बन्द कर देता है। एकमात्र चैत्य पुरुष ही सच्ची प्रसन्नता और आनन्द लाता है।

२. कितना सरल उपाय है—माँ पर अधिकाधिक पूर्ण विश्वास बनाये रखो और जहाँ कोई कठिनाई नहीं है वहाँ अपने मन को कठिनाइयाँ पैदा मत करने दो।

३. भगवान् को इसलिए मानवत्व ग्रहण करना पड़ता है कि मनुष्य भगवान् तक ऊपर उठ सके। यह एक सीधा-सा सत्य है; पर लगता है कि कोई भी यह समझ नहीं पाता कि भगवान् यह सब करते हैं और फिर भी मनुष्य से भिन्न बने रह सकते हैं—फिर भी वे भगवान् बने रह सकते हैं।

४. इस विषय में कभी सन्देह न करो कि तुम्हें इस पथ पर ले जाने के लिए श्रीमाँ हमेशा तुम्हारे संग-संग रहेंगी। कठिनाइयाँ आती हैं और चली जाती हैं, पर माँ हैं तो विजय सुनिश्चित है।

५. अभी चाहे जो भी कठिनाइयाँ क्यों न मौजूद हों, इस बात का विश्वास रखो कि उन पर विजय प्राप्त होगी। बाहरी सत्ता के घबराने का कोई कारण नहीं है—माँ की शक्ति और तुम्हारी भक्ति रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को पार करने के लिए काफ़ी होंगी।

६. मनुष्य जितना ही अधिक माँ की क्रिया की ओर खुला होता है उतनी ही आसानी से कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं और यथार्थ चीज़ सम्पन्न हो जाती है।

७. अगर कोई तेज़ी से माँ की शक्ति को न भी पुकार सके फिर भी उसे यह भरोसा रखना चाहिये कि वह ज़रूर आयेगी।

८. प्र. बार-बार आने वाली कठिनाइयों का सामना करने का सही तरीक़ा क्या है?

उ. समता, त्याग और श्रीमाँ की शक्ति को पुकारना।

९. यदि चैत्य पुरुष की प्रकृति जाग्रत् हो जाये, अपने पीछे विद्यमान माँ की चेतना और शक्ति के द्वारा तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे और तुम्हारे अन्दर कार्य करे तो कुछ भी असम्भव नहीं है।

१०. कार्य, बातचीत, पढ़ना-लिखना आदि सब कुछ शान्ति के साथ, सत्य चेतना के अंग के रूप में अन्दर से किया जाना चाहिये—सामान्य चेतना की अस्त-व्यस्त और चञ्चल क्रिया के द्वारा नहीं।

११. मनुष्य कर्म करते हुए भी अन्दर शान्त-स्थिर-सुदृढ़ बना रह सकता है। स्थिरता का यह अर्थ कतई नहीं है कि मन शून्य हो जाये या कार्य बिलकुल किया ही न जाये।

१२. जिस मनुष्य में जीवन और उसकी कठिनाइयों का मुक़ाबला धैर्य और दृढ़ता के साथ करने का साहस नहीं है वह कभी साधना की अधिक बड़ी आन्तरिक कठिनाइयों को पार करने में समर्थ नहीं होगा। इस योग का एकदम पहला पाठ यह है कि अचञ्चल मन से, अटूट साहस तथा माँ की शक्ति पर पूर्ण निर्भरता के साथ जीवन और उसकी अग्नि-परीक्षाओं का सामना किया जाये।

१३. "मैं फिर कोशिश करूँगा" कहना पर्याप्त नहीं है; आवश्यक बस यह है कि निरन्तर प्रयास किया जाये—अविरत, विषाद से रहित हृदय से, जैसा कि *गीता* कहती है, '*अनिर्विण्णचेतसा*।'...

१४. अगर भगवान् के लिए किसी की चाह सर्वोच्च चाह बन जाये तो वह अवश्य ही बिना किसी मनस्ताप के उसी के प्रति अपना सारा जीवन अर्पित कर सकता है और समय, कठिनाई या परिश्रम के लिए शिकायत नहीं कर सकता।

१५. दिव्य और अनन्त माँ के प्रति आत्म-समर्पण करना, चाहे वह जितना कठिन क्यों न हो, हमारे लिए एकमात्र फलदायी साधन और हमारा एकमात्र स्थायी आश्रय है; माँ के प्रति आत्म-समर्पण करने का अर्थ यह है कि हमारी प्रकृति उनके हाथों का यन्त्र और हमारी अन्तरात्मा उनकी गोद का बालक बन जाये।

१६. यद्यपि अन्धकार बहुत अधिक है—और यह जगत् तथा साथ ही मनुष्य की भौतिक प्रकृति भी उससे भरी हुई है—फिर भी सच्ची ज्योति की एक किरण ही अन्त में दसगुने अन्धकार को भी पराजित कर सकती है। इस बात पर विश्वास रखो और इसे हमेशा दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो।

१७. एक नियम मैं तुमलोगों के लिए निश्चित कर सकता हूँ, ऐसा कोई काम मत करो, ऐसी कोई बात मत कहो या सोचो जिसे तुम श्रीमाँ से छिपाना चाहो।

१८. जो लोग सीधे नहीं हैं वे माँ की सहायता से लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि वे अपने-आप ही उसे दूर हटा देते हैं। जब तक वे परिवर्तित नहीं हो जाते तब तक वे यह आशा नहीं कर सकते कि अतिमानसिक ज्योति और सत्य उनकी निम्नतर प्राणिक और भौतिक प्रकृति में अवतरित होंगे; वे लोग अपनी ही बनायी हुई दलदल में फँसे रहते हैं और उन्नति नहीं कर सकते।

१९. भौतिक रूप में, स्थूल रूप में, इस पृथ्वी पर कृतज्ञता के अन्दर ही शुद्धतम आनन्द का स्रोत पाया जाता है।

२०. ... इस योग का लक्ष्य जगत् तथा जीवन से बाहर निकल कर स्वर्ग या निर्वाण में जाना नहीं है बल्कि जीवन तथा अस्तित्व का परिवर्तन है; यह जीवन को किसी संयोग के रूप में नहीं बल्कि एक सुस्पष्ट तथा मुख्य लक्ष्य के रूप में मानता है।

२१. प्र. प्रभो! वर दो कि मेरा प्राण स्थिर हो जाये। वह घड़ी निकट है जब प्राण...

उ. एकाग्र, बलशाली और स्थिर हो जायेगा।

२२. योग करने का मतलब ही है, सब प्रकार की आसक्तियों को जीतने और एकमात्र भगवान् की ओर मुड़ जाने का संकल्प करना। योग की सबसे प्रधान बात है, पग-पग पर भागवत कृपा पर विश्वास रखना, निरन्तर अपने विचार भगवान् की ओर मोड़ते रहना और जब तक तुम्हारी सत्ता उद्घाटित न हो जाये और आधार के अन्दर कार्य करती हुई श्रीमाँ की शक्ति का अनुभव न हो सके तब तक अपने-आपको समर्पित करते रहना।

२३. सभी योग कठिन हैं क्योंकि प्रत्येक योग में लक्ष्य है, भगवान् को

प्राप्त करना, सम्पूर्ण रूप से भगवान् की ओर मुड़ जाना, और उसका तात्पर्य है प्रकृति की सामान्य गतिविधियों से मुँह मोड़ कर उसके परे की किसी वस्तु की ओर मुड़ जाना। परन्तु मनुष्य जब सच्चाई के साथ अभीप्सा करता है तब उसे शक्ति दी जाती है जो अन्त में कठिनाइयों को जीत लेती और लक्ष्य पर पहुँच जाती है।

२४. संसार का जीवन अपने स्वभाव में अशान्ति का क्षेत्र है—उचित रूप में उसमें से गुज़रने के लिए मनुष्य को अपना जीवन और कर्म भगवान् को अर्पित करना होता है और अन्तस्थ भगवान् की शान्ति के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है। जब मन अचञ्चल हो जाता है तो मनुष्य भगवती माँ को अपने जीवन को सहारा देते हुए अनुभव कर सकता है और प्रत्येक चीज़ को उनके हाथों में सौंप सकता है।

२५. बिना हिचकिचाये, मन और हृदय दोनों से दूसरे का मंगल चाहना ही वह सर्वोत्तम सहायता है जो मनुष्य दूसरे को दे सकता है।

२६. तुम्हें स्वयं अपने अन्दर और अपने चारों ओर विद्यमान जगत् के प्रति अपने मनोभाव में भी अत्यन्त अचञ्चल और स्थिर बने रहना चाहिये और सर्वदा अधिकाधिक अचञ्चल और स्थिर बनते जाना चाहिये। अगर तुम ऐसा कर सको तो तुम साधना में धीरे-धीरे प्रगति कर सकते हो और कम से कम क्लेश और उपद्रव के साथ अपने-आपको विस्तारित कर सकते हो।

२७. सब कुछ अपने हृदय में विराजमान श्रीमाँ के सामने रख दो जिससे उनकी ज्योति अच्छे-से-अच्छे परिणाम लाने के लिए क्रिया कर सके।

२८. श्रीमाँ की शान्ति तुम्हारे ऊपर विद्यमान है—अभीप्सा तथा शान्त-स्थिर आत्मोद्घाटन के द्वारा वह नीचे उतरती है। जब वह प्राण और शरीर के ऊपर अपना अधिकार जमा लेती है तब समता का आना आसान हो जाता है और अन्त में वह स्वाभाविक बन जाती है।

२९. श्रीमाँ की शक्ति केवल ऊपर, सत्ता के शिखर पर ही नहीं है, वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे पास भी है। जिस समय तुम्हारी प्रकृति उसे कार्य करने देगी उस समय कार्य करने के लिए वह तैयार बैठी है। यहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के साथ वह इसी प्रकार विद्यमान है।

एक शिष्या के नाम पत्र

(एक फ़्रेंच महिला के नाम जो ६६ वर्ष की उम्र में १९३७ और १९४१ के बीच आश्रम में रही थीं।)

कोई चीज़ अपरिहार्य नहीं है। हर क्षण उच्चतर लोक से भौतिक लोक में हस्तक्षेप हो सकता है जो परिस्थितियों की दिशा बदल सकता है। लेकिन इस स्थिति-विशेष में तुम्हारी भागवत कृपा पर श्रद्धा तथा डॉक्टरों की राय पर आश्रित बहुत शक्तिशाली मानसिक रचना के बीच संघर्ष है।

इस डॉक्टरी सुझाव की शक्ति इस तथ्य में है कि यह अवचेतना में घर कर लेता है और वहाँ से शरीर पर क्रिया करता है, उसे सचेतन मन भी नहीं पकड़ सकता जब तक कि उसे गुप्तचर की जागरूकता के साथ अवचेतना को शुद्ध करने का अभ्यास न हो।

तो यह बात है—मैं तुम्हें यह वचन नहीं दे सकती कि कृपा पर तुम्हारी श्रद्धा तीव्र होगी, इतनी अटल होगी कि इन हानिकर डॉक्टरी संकेतों के प्रभाव को जीत ले और मुझे लगता है कि मुझे यह कहने का अधिकार नहीं है कि "यह कुछ भी नहीं है," जब कि तुम्हारी भौतिक चेतना में हर चीज़ "संकट" की दुहाई दे रही है!

विश्वास रखो कि हमारी सहायता और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

२४ मार्च १९३७

निश्चय ही हम तुम्हें जून तक यहाँ रखने में ख़ुश होंगे।

तुम्हारा यह कहना बिलकुल ठीक है कि ये 'बन्द दरवाज़े' कल्पना का प्रभाव हैं। उनमें से निकल जाने की इच्छा में हमेशा उन्हें खोलने की शक्ति होती है, जैसे विजय की निश्चिति पथ को प्रशस्त कर देती है।

१२ अप्रैल १९३७

निश्चय ही जब तुम वापस आने के लिए तैयार होओ, जब तुम अपने बेटे के लिए जो करना चाहती हो वह कर लो, तो बस हमें ख़बर कर देना

और हम तुम्हारा सहर्ष स्वागत करेंगे।

हम जो सहायता दे सकते हैं उसे पाने के लिए आन्तरिक अचञ्चलता और शान्ति तथा भगवान् की ओर तीव्र अभीप्सा सर्वोत्तम तैयारी हैं। तुम हमसे उसे पाने के बारे में आश्वस्त रह सकती हो।

२९ अप्रैल १९३७

साधारणतः सहसा होने वाले परिवर्तन न तो सर्वांगीण होते हैं और न चिरस्थायी। वे प्राण में बिजली की कौंध होते हैं जो बहुधा धुँएँ में विलीन हो जाते हैं। धीरे-धीरे, स्थिर रूप से किया गया प्रयास और अविच्छिन्न प्रगति अधिक विश्वसनीय हैं।

अपनी आत्मा के शोध के लिए, नींद में क्या हुआ था उसे याद करना निश्चित रूप से अनिवार्य नहीं है।

मैं ख़ुश हूँ कि तुम स्वस्थ अनुभव कर रही हो।

विश्वास रखो कि हमारी सहायता और संरक्षण हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

१२ मई १९३७

अपने-आपको विशालता के भाव से अभिभूत न होने दो बल्कि उसमें ख़ुशी से और शान्ति के साथ स्नान करो। अगर हम अपरिहार्य रूप से अपनी व्यक्तिगत चेतना की चारदीवारी में बन्द होते तो यह सचमुच दुःखद होता और हम पर हावी रहता—लेकिन अनन्त हमारे लिए खुला हुआ है; हमें बस उसमें डुबकी लगानी है।

२९ मई १९३७

श्रीअरविन्द ने तुम्हारा पत्र पढ़ लिया है और वे मेरे साथ इस बात से सहमत हैं कि इतनी आगे से योजना बनाना कठिन है क्योंकि परिस्थितियों के बारे में अनुमान करना बहुत कठिन है। फिर भी एक बात निश्चित है : श्रीअरविन्द ने तुम्हें शिष्या के रूप में स्वीकार कर लिया है—यह इस बात से स्पष्ट है कि उन्होंने तुम्हें एक नया नाम दिया है। लेकिन शिष्या होने का यह आवश्यक अर्थ नहीं है कि तुम ज़रूर आश्रम में निवास करो। वस्तुतः, आश्रम में रहने वालों की अपेक्षा बाहर रहने वाले शिष्य अधिक

हैं। आश्रम में रहने के लिए कई शर्तें ज़रूरी हैं जिनमें से एक यह है कि व्यक्ति का स्वास्थ्य इतना अच्छा हो कि वह यहाँ के अनुशासन का पालन कर सके, जो विशेष भोजन, परिचर्या आदि की व्यवस्था नहीं करता; ये व्यवस्थाएँ दर्शकों के लिए, कुछ समय के लिए की जा सकती हैं किन्तु कई कारणों से इन्हें स्थायी बनाना सम्भव नहीं है। अतः, जब तुम लौटने के लिए तैयार होओ तो हमें तीन-चार महीने पहले सूचना दे देना ताकि हम कोई व्यावहारिक व्यवस्था कर सकें।

रही बात किताबें पढ़ने की, तो मेरा ख़याल है कि तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा होगा कि तुम अभी के लिए इस तनाव से बची रहो। मेरा ख़याल है कि तुम अभी जो अनौपचारिक कक्षाएँ लेती हो वे काफ़ी हैं।

मैं यह जान कर प्रसन्न हूँ कि तुम स्वस्थ हो गयी हो और आशा करती हूँ कि तुम अधिकाधिक स्वस्थ होती जाओगी।

५ जुलाई १९३७

मुझे खेद है कि पिछले कुछ दिनों से तुम दुःख का अनुभव कर रही हो। ऐसा होना नहीं चाहिये था। प्रकाश को हमेशा अपने साथ नयी प्रगति का आनन्द लाना चाहिये। मेरा ख़याल है कि अब सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१० जुलाई १९३७

चिन्ता न करो। तुमने जाने या अजाने कोई भूल नहीं की है। मैं भीतरी और बाहरी परिस्थितियों के समूह की बात कह रही थी, परिस्थितियों के ऐसे समूह की जो अनिवार्य रूप से पिछले समूह का परिणाम होता है, और इसी तरह चलता रहता है। केवल योग-शक्ति, दिव्य चेतना की शक्ति ही परिणामों की इस शृंखला को तोड़ सकती है।

तुम्हें शान्ति-भरे हृदय और आशा-भरे मन के साथ जाना चाहिये। तुम्हें इस विश्वास के साथ जाना चाहिये कि हमारी सहायता और हमारी शक्ति तुम्हारे साथ जा रही हैं और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं और हमेशा रहेंगे।

१४ सितम्बर १९३७

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. २७७-७९

ध्यान के विभिन्न प्रकार

ध्यान द्वारा हम उच्चतर चेतना के साथ सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता भी बढ़ा सकते हैं। हमें इसके पीछे के सिद्धान्त को समझने की कोशिश करनी चाहिये। मन के अन्दर यह क्षमता होती है कि वह जिस विषय या वस्तु के सम्पर्क में आये या तादात्म्य स्थापित करे उसके वर्ण, उसकी क्षमता को अपना ले। मान लो, हम किसी फूल पर एकाग्र हों और अपने-आपको उसके साथ तदात्म कर लें तो हम उस फूल के गुण अपना सकते हैं। अगर हम किसी देवता की शक्ति पर केन्द्रित हों तो उस शक्ति के प्रति खुल सकते हैं। सभी देवता 'परम' की शक्तियाँ हैं। योग में भी एक ही देवता हैं—ब्रह्मन्—वही परमोच्च है। अन्य सभी भगवान् की कुछ मौलिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर हम किसी को रोगमुक्त करना चाहते हैं तो हमें भगवान् की एक विशेष शक्ति के सम्पर्क में आना होगा; अगर हम सौन्दर्य-बोध चाहते हैं तो हम एक और शक्ति पर केन्द्रित होते हैं, अगर हम समृद्धि चाहते हैं तो एक तीसरी शक्ति पर केन्द्रित होते हैं।

इस तरह ध्यान बतलाता है कि भगवान् के साथ कैसे जुड़ा जाये। मन के अन्दर स्थिर और अचञ्चल होने की क्षमता है ताकि उच्चतर शक्ति कार्य कर सके या वह मन में उतर सके। तब वह हमारा पुराना मानव मन नहीं रहता बल्कि हमारा मन और यह शक्ति साथ मिल कर आन्तरिक चेतना में ऐसा परिणाम ला सकते हैं जैसा पहले कभी नहीं आया। इसलिए हमें भारतीय दर्शन और भारतीय देवों के बारे में जानना चाहिये। देवों का मनुष्य की तरह पार्थिव शरीर नहीं होता। उनका पार्थिव आकार होता है, लेकिन मनुष्य की तरह पार्थिव शरीर नहीं होता। उनका एक ज्योतिर्मय शरीर होता है। उनके शरीर हमारे अन्दर होते हैं और वे सार्वभौम भी बन सकते हैं और अत्यन्त छोटे भी। वे हमारे अन्दर प्रवेश करके हमारे द्वारा कार्य कर सकते हैं। जब हम ध्यान में होते हैं तो हमारे विचार केन्द्रित होते हैं और चीज़ें अपने-आप होने लगती हैं। इस तरह उच्चतर लोक को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता के कारण मन किसी वस्तु या विषय के साथ,

यहाँ तक एक हो जाता है कि वह बिना प्रयास के उसके बारे में सब कुछ जान लेता है। यह क्षमता ध्यान के एक अभ्यास का परिणाम होती है।

अभ्यास के तीन भाग होते हैं। पहला है, नियन्त्रण। अपने-आपको इधर-उधर भागते फिरने से रोको। तुम एक चीज़ देखते हो और तुम्हें याद हो आती है कि तुमने इसे काश्मीर में देखा था। इसके साथ ही तुम्हारे मन में विचारों की शृंखला दौड़ जाती है और तुम सारा दिन उसी क्रिया-प्रतिक्रिया, आकर्षण और विकर्षण में लगा देते हो और परिणामस्वरूप तुम्हारे अन्दर ऐसे विचार पैदा हो सकते हैं जो हानिकर हों, तो तुम्हें मन को नियन्त्रित करना चाहिये।

दूसरी चीज़ है, अपने मन को तुम जिस वस्तु पर केन्द्रित करना चाहते हो उस पर केन्द्रित करने का तरीक़ा सीखना। और तीसरी चीज़ यह कि तुम अपने मन के गुण को बदल सको जिससे वह मानव मन न रह कर दिव्य मन बन जाये, जो सीधा तुम्हारे मन में से उतर कर तुम्हें राह दिखा सके। तो यह है मन की योग्यता। लेकिन तुम्हें यह जानना चाहिये कि ध्यान केवल मानसिक ही न हो—यद्यपि मन एक बड़ा अंग है—वह तो आन्तरिक चेतना का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

मानव व्यक्तित्व में मन के सिवा चैत्य भी है। साधारणतः चैत्य मन, प्राण और शरीर के प्रभाव-तले रहता है। ध्यान द्वारा तुम उसे मुक्त कर सकते हो। तुम अपनी चेतना में ऊपर भी उठ सकते हो। जब तुम अन्तर्भासिक क्षेत्र में उठते हो तो फिर वहाँ से कार्य कर सकते हो। जब तुम अधिमानस स्तर पर पहुँच जाओ—यह देवों का लोक है—तो वहाँ से कार्य कर सकते हो और जब तुम अतिमानस तक पहुँचो तो वहाँ से कार्य कर सकते हो। इसका अर्थ यह है कि तुमको ध्यान में एक उच्चतर लोक में पहुँचना चाहिये, तब तुम अपने कार्य और व्यक्तित्व को अपनी चैत्य सत्ता के चारों ओर या ज़्यादा ऊँचे लोक में एकत्र कर सकते हो ताकि एक विशेष परिणाम पा सको। यह हमारे दैनिक जीवन को एक नया अर्थ, एक नयी शक्ति देता है।

अब हम ध्यान के कुछ प्रकारों की बात करेंगे। पहला सामान्यतः भगवान् को पाने के लिए होता है। प्रायः सभी ध्यान इसे मुख्य उद्देश्य मानते हैं। दूसरा प्रकार है, कार्य करते हुए ध्यान जिसमें गुह्य ज्ञान भी आ जाता है।

भारतीय योग के अनुसार अगर हम मानव शरीर पर ध्यान करें तो हम मानव के शरीर-शास्त्र के बारे में सब कुछ जान सकते हैं। प्रसिद्ध महावैद्य च्यवन के बारे में यह गाथा है कि उन्होंने अपने शिष्यों को ऐसी जड़ी-बूटियाँ खोजने के लिए भेजा जिनमें कोई औषधीय गुण न हों। वे काफ़ी खोज-बीन करने के बाद लौटे और बोले कि उन्हें ऐसी कोई भी जड़ी-बूटी नहीं मिली जिसमें कोई गुण न हो। अगर कोई योगी ध्यानस्थ अवस्था में किसी पौधे को छू दे तो वह उसके गुणों को जान सकता है, पौधा अपने-आप उसे अपने गुण बता देता है। दवाइयाँ बोलती नहीं हैं परन्तु यदि आन्तरिक चेतना काफ़ी खुली हुई हो तो उसके द्वारा यह ज्ञान पाया जा सकता है।

तीसरी चीज़ जिसके बारे में हमें बात करनी है वह बहुत प्रारम्भिक अभ्यास है। हमारी आन्तरिक चेतना सोयी रहती है। एक बहुत ही सरल-सा अभ्यास है—प्रकाश पर ध्यान लगाना—जो आन्तरिक चेतना को खोल देता है और वह आन्तरिक चेतना बदले में स्पष्ट दर्शन, इन्द्रियों के परे के ज्ञान, स्पष्ट श्रवण आदि कई क्षमताओं को तुम्हारे मन के शान्त होने से पहले ही जगा देती है। इसके लिए केवल प्रकाश पर ध्यान करना होगा। बाद में मैं तुमलोगों को गायत्री मन्त्र का रहस्य बतलाऊँगा जो हमारे पूर्वजों की दी हुई सबसे बड़ी आध्यात्मिक देन है।

और हम सम्मिलित ध्यान के बारे में भी विचार करेंगे। सम्मिलित संगठन के लिए, सम्मिलित मन के लिए सम्मिलित ध्यान बहुत महत्त्वपूर्ण है।... हम देखेंगे कि गुह्य ज्ञान और ध्यान में क्या मेल है।

मैं तुमलोगों को एक छोटी-सी घटना सुनाऊँगा। माताजी ने कहा है कि उन्होंने दो सुन्दर लड़कियाँ देखी थीं जो जुड़वाँ थीं जिन्हें देख कर उन्हें रेनॉल्ड के एक बहुत प्रसिद्ध चित्र की याद हो आयी। जब उन्होंने लड़कियों की माँ से इसका उल्लेख किया तो उसने कहा, "जब मैं गर्भवती थी तो मैंने अपने शयनकक्ष में रेनॉल्ड के उस चित्र की प्रतिकृति लटका रखी थी। हर रोज़ सोने से पहले और जागते ही मैं उस चित्र को देखा करती थी और यह प्रार्थना करती थी कि मेरे बच्चे इस चित्र के जैसे ही हों।"

तो हम कल्पना कर सकते हैं कि इससे कैसे सहायता मिलती है। भारत में कुछ लोग इस तथ्य से अवगत हैं कि अगर कोई गर्भवती नारी

किसी विशेष चित्र का ध्यान करती है तो वह उस चित्र की कोई विशेषता बच्चे में ले आती है। ध्यान के ये कुछ ऐसे लाभ हैं जिनके बारे में हम समझने की कोशिश करेंगे।

चलो, हम शुरू से आरम्भ करें। पहले हम भागवत प्राप्ति को लें। उसके लिए हम कौन-सा ध्यान लें? समझने की पहली बात यह है कि केवल भागवत चेतना ही स्वयं-प्रकाश है। सभी लोक—निचले लोक, अधिमानस जो देवलोक है, मानस-लोक आदि सभी अपना प्रकाश भगवान् से पाते हैं। उनमें से कोई भी स्वयं-प्रकाश नहीं है। केवल भागवत चेतना स्वयं-प्रकाश होती है।

जानने-लायक दूसरी बात यह है कि केवल भागवत चेतना सर्वव्यापक है। अन्य लोकों में से कोई भी सर्वव्यापक नहीं है, वे चाहे जितने भी बड़े हों, उनकी अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं और चूँकि भागवत चेतना सर्वव्यापक है अतः वह सर्वज्ञ भी है। संसार का सारा ज्ञान—वैज्ञानिक, चिकित्सा-सम्बन्धी, वनस्पति-शास्त्रीय या जो कोई भी क्यों न हो, उस सबका मूल भगवान् में है। केवल अन्तर्भास के साथ उच्चतर लोकों में जा सकने वाले ही सर्वोत्तम खोज कर सकते हैं, सर्वोत्तम कविता या साहित्य रच सकते हैं। केवल भगवान् के साथ सम्बन्ध ही सर्वोत्तम गुण दे सकता है और उसे ही वे अपने दैनिक जीवन में प्रकट कर सकते हैं। भागवत चेतना सर्वज्ञ, स्वयं-प्रकाश और सर्व-व्यापक है और चूँकि वह सर्वज्ञ और सर्व-व्यापक है अतः वह सर्वशक्तिमान् भी है।

योग के अनुभवों के अनुसार भगवान् के हज़ारों गुण होते हैं—वे सर्व-स्वास्थ्य हैं, सर्व-ज्ञान हैं, वे सर्व-सौन्दर्य-भावना भी हैं। जब हम भगवान् के किसी विशेष गुण का ध्यान करते हैं तो हमारे अन्दर वह गुण-विशेष जागता है। ध्यान का यह एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

"शान्ति" की इच्छा हो,
तो पहले "इच्छा" को शान्त करो।

काम-वासना—भोजन—नींद

क्या यह सच है कि साधना में काम-वासना सबसे बड़ी बाधा है?

कम-से-कम, सबसे बड़ी बाधाओं में से एक।

क्या ज़्यादा खाने से कामुक-इच्छा बढ़ती और कम खाने से घटती है?

यह कहना ज़्यादा ठीक होगा कि कुछ भोजनों के बारे में ऐसा कहा जाता है—उदाहरण के लिए, मांस, प्याज़, मिर्च इत्यादि।

क्या लालच, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि काम-वासना के साथी हैं?

वे बहुधा कामुक-इच्छा के साथ-साथ चलते हैं, हालाँकि हमेशा नहीं।

श्रीमाँ ने कहा है: "सेक्स जैसे आवेगों का बल आमतौर पर इस तथ्य में निहित होता है कि लोग उन पर बहुत अधिक ध्यान देते हैं"। व्यक्ति इन आवेगों पर बहुत अधिक ध्यान देता है का क्या मतलब है?

अगर व्यक्ति हमेशा उन्हीं के बारे में सोचता रहे तथा उनके साथ संघर्ष करता रहे, तो इसका मतलब ही है कि वह उस पर बहुत ध्यान दे रहा है।

वह उन पर बहुत ज़्यादा ध्यान देने से बचने के लिए क्या कर सकता है?

उनसे अपने-आपको उसे अलग करना चाहिये—सेक्स के बारे में कम तथा भगवान् के बारे में ज़्यादा सोच कर।

श्रीमाँ ने कामुक-इच्छाओं के बारे में यह भी कहा है कि "उन पर ज़बरदस्ती नियन्त्रण रखने का प्रयास करना, अपने अन्दर उन्हें दबाये रखना तथा उन पर बैठ जाना भी ग़लत है"। व्यक्ति इन विचारों को अन्दर कैसे पकड़ कर रख सकता तथा उन पर बैठ सकता है?

शब्द अपने-आप अपनी व्याख्या देते हैं। अगर तुम पूरी तरह कामुक-इच्छाओं से भरे रहो तथा उन्हें किसी भी तरह की क्रिया में प्रकट करने से रोके रखो, यानी उन्हें अपने भीतर दबाये रखो और उन पर बैठ जाओ। क्रोध या किसी और आवेश के साथ भी ऐसा ही होता है। उन्हें निकाल बाहर करना ही होगा, अपने अन्दर कतई नहीं रखना चाहिये।

आपने कहा है कि किसी ग़लत गतिविधि का नियन्त्रण केवल इसे दबाये रखता है और इसे पूरी तरह से हटाने के लिए निकाल बाहर करना ही होगा। फिर सेक्स, क्रोध, भय इत्यादि गतिविधियों को नियन्त्रित करने की उपयोगिता ही क्या है?

यदि तुम्हारा बहिष्करण सफल नहीं होता तो तुम्हें नियन्त्रित करना होगा। कम-से-कम नियन्त्रण तुम्हें प्राणिक आवेगों का ग़ुलाम होने से तो रोकता है। एक बार तुम्हारे अन्दर नियन्त्रण हो तो इसे सफलतापूर्वक बाहर खदेड़ना आसान होता है।

कामुक-ऊर्जा को ओजस् में बदलने की प्रक्रिया क्या है?

यदि इसे एक प्रक्रिया के द्वारा करना है तो तपस्या (मन, वाणी, कर्म पर आत्म-नियन्त्रण) तथा इच्छा-शक्ति के द्वारा वीर्य-ऊर्जा को ऊपर की ओर खींच कर करना होगा। लेकिन यह शक्ति के अवतरण द्वारा तथा उसके सेक्स-केन्द्र के ऊपर काम करने और उसके परिणामस्वरूप रूपान्तरण द्वारा ज़्यादा अच्छी तरह किया जा सकता है, जैसा कि इस योग में अन्य सभी चीज़ों के साथ किया जाता है।

क्या हमारी साधना में उपवास करना सहायक होता है?

उपवास से इस साधना में सहायता नहीं मिलती।

क्या इन्द्रियों को नियन्त्रित करने में बहुत कम भोजन सहायक होता है?

नहीं, यह केवल उन्हें भड़काता है—सीमित मात्रा में भोजन लेना सबसे अच्छा है। उपवास करने वाले लोग आसानी से उत्तेजित हो जाते हैं और

हो सकता हो कि वे अपना सन्तुलन खो बैठें।

अगर कोई सिर्फ़ शाकाहारी भोजन लेता है तो क्या वह अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करने में सहायक होता है?

मांसाहारी लोगों को जो मुश्किलें होती हैं उनमें से कुछ से बचा जा सकता है, लेकिन यह अपने-आप में पर्याप्त नहीं है।

जो साधक उच्चतर चेतना तक पहुँच चुका हो उसके लिए क्या नींद आवश्यक है?

जब तक तुम ऐसे शरीर में हो जो पूरी तरह से अपने सभी कार्य-कलापों में रूपान्तरित नहीं हुआ, तब तक नींद आवश्यक है।

मन और प्राण रात के समय इतने सक्रिय क्यों होते हैं? व्यक्ति रात को उनकी गतिविधि को कैसे नियन्त्रित कर सकता है?

यह उनका क्रिया-कलाप है। जब तक व्यक्ति नींद में पूरी तरह से सचेतन नहीं हो जाता, वे अपना कार्य करते रहेंगे।

मेरी नींद के पहले और बीच के भाग में मानसिक और प्राणिक क्रिया-कलाप बहुत ज़्यादा होते रहते हैं, लेकिन अन्तिम भाग में यह प्रवृत्ति कम हो जाती है तथा मुझे विभिन्न प्रकार के प्रतीकात्मक स्वप्न आते हैं और उच्चतर ज्ञान के संकेत मिलते हैं। इसका क्या कारण है?

बहुत सामान्य रूप में नींद में व्यक्ति सामान्य चेतना से अधिकाधिक गहरी चेतना के लम्बे अनुक्रमण में से गुज़रता है जब तक कि वह चैत्य तक नहीं पहुँच जाता तथा वहाँ विश्राम नहीं लेता या फिर जब तक कि वह उच्च से उच्चतर चेतना में पहुँच कर कुछ नीरवता या शान्ति नहीं पा लेता। इस विश्राम में कुछ पल बिताना असली नींद का चिह्न है, जो उसे पुनः ताज़गी से भर देता है—अगर व्यक्ति इसे नहीं पाता तो उसे आधा आराम ही मिलता है। केवल तभी जब तुम विश्राम के इन दोनों क्षेत्रों में से किसी एक के निकट पहुँचते हो कि तुम इस तरह के उच्च प्रकार के सपनों को

देखना आरम्भ करते हो।

नींद में चैत्य या उच्चतर चेतना में जाने का रास्ता क्या है ताकि वहाँ आराम मिले?

यह अनजाने में ही हो जाता है। अगर व्यक्ति इसे सचेतन होकर नियन्त्रित करना चाहता है तो उसे पहले नींद में सचेतन होना होगा।

भारी अवचेतना में डूबी हुई नींद को हलका कैसे किया जाये?

उसमें ज़्यादा चेतना को बुला कर।

मैंने देखा है कि दिन के समय आधे घण्टे की नींद भी मुझे रात की पाँच या छह घण्टे की नींद से कहीं ज़्यादा तरोताज़ा कर देती है। इसका क्या कारण है?

इसका कारण यही होगा कि दिन के समय यह एक अलग तरह की नींद होती है, कम भारी तथा जो अवचेतना में कम समय बिताती है।

कुछ लोगों का कहना है कि वे सारी रात बिना कोई स्वप्न देखे गुज़ारते हैं? क्या यह सम्भव है?

उनके कहने का बस यही मतलब होता है कि जब वे नींद में से वापस लौटते हैं तो अपने सपनों के बारे में सचेतन नहीं होते। नींद में चेतना दूसरे स्तरों में चली जाती है तथा वहाँ के अनुभव पाती है और जब ये अनुभव भौतिक मन के द्वारा पूर्ण या अपूर्ण रूप से अनूदित होते हैं, तो इन्हें स्वप्न कहा जाता है। नींद में सारे समय ऐसे स्वप्न आते रहते हैं, लेकिन कभी व्यक्ति इन्हें याद रखता है तो कभी बिलकुल भी याद नहीं रखता। कभी-कभी व्यक्ति नीचे अवचेतन में भी चला जाता है और वहाँ स्वप्न देखता है, लेकिन वह इतनी नीचे चला जाता है कि जब उसमें से बाहर निकलता है तो उसे इतना भी याद नहीं रहता कि उसने सपने देखे।

क्या सपनों का कोई महत्त्व है? क्या अवचेतना के सपनों का कोई अर्थ होता है?

कोई सपना, जब वह अवचेतना से नहीं आता तो वह या तो प्रतीकात्मक होता है या फिर किसी अतिभौतिक स्तर का अनुभव या किसी मानसिक, प्राणिक या किसी अन्य शक्ति की रचना होता है या विरल मामलों में वह भूत, वर्तमान या भविष्य की किसी वास्तविक या सम्भव घटना का संकेत हो सकता है। जो सपना अवचेतन स्तर से आता है उसका कोई महत्त्व नहीं होता; वह तो बस अतीत से अवचेतन में छोड़े गये प्रभावों और यादों की खिचड़ी होता है।

एक स्वप्न में मैंने देखा कि कुछ लोग बहुत मुश्किल से पर्वत पर चढ़ रहे हैं। मैं भी उनके साथ चढ़ रहा था। कुछ समय बाद मैं थक गया तो मैंने चढ़ना छोड़ दिया और सोचने लगा कि क्या किया जाये। फिर मैंने अनुभव किया कि एक शक्ति ने मुझे हलके से उठा कर, पर्वत के शिखर पर पहुँचा दिया। शिखर पर पहुँच कर, मैंने देखा कि वहाँ विभिन्न रंगों और प्रकाशों के कई सुन्दर घर थे। फिर मैं उठ गया। यह सपना क्या दर्शाता है?

यह दो चीज़ों का प्रतीक है—एक है आत्म-प्रयास, दूसरी है श्रीमाँ की शक्ति की वह क्रिया जो साधक को उठाये लिये चलती है।

नींद के दौरान कई बार मुझे प्राणिक स्तर के बुरे सपने आते हैं। इनसे कैसे बचा जाये?

उदाहरण के लिए, सोने जाने से पहले, जाग्रत् अवस्था में तुम सपने में आने वाली इन चीज़ों के विरुद्ध इच्छा-शक्ति लगा कर इनसे बच सकते हो। यह एक बार में सफल नहीं होगा, लेकिन अन्त में यह होकर रहेगा। अन्यथा तुम्हें नींद में अधिक सचेतन होने की अभीप्सा रखनी चाहिये।

कभी-कभी जब नींद में मुझ पर हमला होता है तो उससे छुटकारा पाने के लिए मैं श्रीमाँ का नाम दोहराता रहता हूँ। तो क्या इसका मतलब यह है कि श्रीमाँ के नाम में भी शक्ति है?

हाँ निश्चित रूप से, नाम में हमेशा शक्ति होती है।

(क्रमशः) **श्रीअरविन्द**

स्वर्ण में रूपान्तरित कर लिया है

(सन् **२०००** में **सरस्वती सम्मान**, सन् **२००१** में **पद्मश्री** और सन् **२०२०** में **पद्मभूषण** से विभूषित, ओडिया और अंग्रेज़ी दोनों में समान रूप से क़लम के धनी, साहित्य-सेवी, हम सभी आश्रमवासियों के माननीय और चहेते मनोज दास जी ने यह प्रतीकात्मक कहानी कई साल पहले लिखी थी। शायद यह कहने में अत्युक्ति न हो कि काश! उनकी यह सुनहरी कहानी हम सभी के जीवन को भी सुनहरा बना दे।

'अग्निशिखा' से सम्बद्ध हम सभी का हमारे मनोज दा को हार्दिक अभिनन्दन, अभिवन्दन... —सं.)

बहुत पहले की बात है, किसी देश का राजा अपनी दानशीलता के लिए दूर-दूर तक सुविख्यात था। नगरवासी कहा करते थे—"भूखों को हमारे महाराज भोजन देते हैं, विद्वानों को पुरस्कार, अभिजात-वर्ग को उपाधियाँ और सम्मान। सचमुच, हमारे महाराज देने से कभी नहीं थकते।"

लेकिन वास्तव में राजा देते-देते थक गये थे। एक दिन उन्होंने सोचा—"अपनी सारी उमर मैं भिक्षा और पुरस्कार ही देता रहा। इसका अन्त कहाँ है? क्या मेरी प्रजा सचमुच ज़रूरतमन्द है या ये लोग बस लेने के लिए बार-बार कृतज्ञता के मुखौटे पहन कर आ जाते हैं?"

उन्होंने इस विषय पर बहुत सोचा और एक दिन निश्चय कर लिया—"अब मेरा दान-कर्म समाप्त। आज से मैं बस उन्हीं लोगों को दूँगा जिन्हें सचमुच आवश्यकता है। सचमुच बहुत हो गया। उन्हीं समान लोगों के घर-बार भरते-भरते मैं थक गया हूँ। अब मुझे सचमुच यह जानने की ज़रूरत है कि मेरे राज्य में कौन सबसे ज़रूरतमन्द है और इसके लिए मुझे राज्य के निर्धनतम मनुष्य को ढूँढ़ना होगा।"

अपनी योजना के अनुसार राजा ने अपने राज्य के निर्धनतम व्यक्ति की खोज का काम महामन्त्री को सौंप दिया।

एक हफ़्ते बाद मन्त्री-महोदय ने अपने अभियान की सफलता की घोषणा करते हुए कहा—"महाराज! यहाँ से बहुत दूर नहीं, जंगल के बीच, एक छोटी-सी पहाड़ी पर, हमारे राज्य का निर्धनतम व्यक्ति रहता है—उसके सिर पर न छत है, वस्त्र के नाम पर उसने पेड़ की छाल लपेट रखी है,

और उसका जीवन-निर्वाह होता है वहाँ से गुज़रते लकड़हारों की दया पर जो बीच-बीच में पहाड़ी पर कन्द-मूल, फल रख आते हैं।"

"क्या सचमुच हमारे राज्य में कोई इतना ग़रीब और निस्सहाय मनुष्य भी है?" आश्चर्य की मूर्ति राजा पूछ बैठे। "तब तो मुझे स्वयं वहाँ जाकर देखना होगा कि अभी तक हमारे राज्य ने उसके लिए कुछ किया क्यों नहीं? भिक्षुक और मेरे राज्य में?" राजा तिलमिला उठे।

महामन्त्री हाथ बाँधे, सिर झुकाये खड़े रहे। "मन्त्रिवर!" राजा की गूँज दरबार में सनसना उठी—"तुरन्त घोड़े का प्रबन्ध कीजिये, हम अभी जंगल जायेंगे।"

आनन फ़ानन सारा काफ़िला तैयार खड़ा हो गया। राजा सबको पीछे छोड़, बस महामन्त्री को साथ ले, जंगल की ओर रवाना हो गये। पहाड़ी पर चढ़ कर, भिक्षुक के पास पहुँचे। भिक्षुक आँखें बन्द किये ध्यानावस्था में बैठे थे। काफ़ी समय तक राजा को मन्त्री के साथ वहीं प्रतीक्षा करनी पड़ी, अन्त में जब भिक्षुक ने आँखें खोलीं तो बद्धकर राजा बोल उठे—"मैं इस प्रदेश का राजा हूँ। आप कोई साधु जान पड़ते हैं, लेकिन क्षमा कीजिये, आपकी इस असहाय अवस्था के बारे में मैं बिलकुल अनभिज्ञ था। अब से आपको मेरे राज्य में कोई कष्ट न उठाना पड़ेगा। अब न आपको ठण्ड में ठिठुरना पड़ेगा न मेह में भीगना, न गर्मी आपको सतायेगी और न ही अन्धड़ आपको नुक़्सान पहुँचा पायेगा।"

भिक्षुक मन्द-मन्द मुस्कुरा उठे, कुछ बोले नहीं।

राजा ने फिर अनुग्रहपूर्वक आग्रह किया—"महात्मन्! आप यहीं रहना चाहें तो उसकी भी पूरी व्यवस्था मैं करवा दूँगा। मकान न चाहें तो कुटिया रचवा दूँगा, खाने-पीने का सारा सामान राज्य से सुबह-शाम भिजवा दिया करूँगा और वस्त्र आप जिस तरह के चाहें उसी तरह के बनवा दूँगा लेकिन, कृपया ऐसी विपन्नता में न रहिये, मैं हाथ जोड़ कर आपसे क्षमा चाहता हूँ कि इतने दिनों तक मैं आपकी इस दरिद्रता से अनभिज्ञ था...।" विह्वल राजा ने भिक्षुक के चरणों में अपना माथा टेक दिया।

भिक्षुक ने उन्हें उठा कर प्रेम से कहा—"राजन्! निश्चय ही आप किसी भ्रम के शिकार हो गये हैं। मैं यहाँ का निर्धनतम मनुष्य नहीं हूँ, मुझसे भी ज़्यादा दरिद्र व्यक्ति आपके यहाँ है। और यह बात भी अक्षरशः सत्य है

कि भले ही ऊपर से देखने में मैं कंगालसदृश हूँ, लेकिन वैसे मैं बहुत ही सम्पन्न हूँ, क्योंकि मैं संसार को स्वर्ण में रूपान्तरित कर सकता हूँ...।"

राजा की आँखें फटी की फटी रह गयीं। हकलाते हुए बोले—"क्या कहा, धरती का स्वर्ण में रूपान्तरण! क्या आप छद्मवेश लेकर देवलोक से धरा पर उतर आये हैं? और मेरे राज्य में आपसे भी अधिक निर्धन...?? हे तपस्विन्! आपकी बातें सुन कर वास्तव में अब मैं भ्रम के जाल में फँस गया हूँ। सचमुच मुझे आपकी बातें समझ में नहीं आ रहीं। कृपया बतलाइये, कौन है आपसे भी ज़्यादा विपन्न?? और आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे भी संसार को स्वर्ण में बदलने का कीमिया सिखा दें, क्योंकि तब मैं न संसार का समृद्धतम बल्कि शक्तिशालितम राजा भी बन जाऊँगा।" राजा की विनती स्वर में फूट पड़ी थी।

तपस्वी ने शान्त भाव से कहा—"इस कीमिया को समझने से पहले तुम्हें कुछ नियमों का पालन करना होगा राजन्!"

"मैं बिलकुल प्रस्तुत हूँ।" राजा तुरन्त, सहर्ष बोल उठे।

"तब राजन्, पूरे एक वर्ष तक सूर्योदय और सूर्यास्त के पहले, दिन में दो बार, नियमित रूप से तुमको यहाँ आना होगा, हम इसी पहाड़ी पर एक साथ बैठेंगे।" तपस्वी बोले।

"मैं बिना नागा आया करूँगा महात्मन्! इसमें कभी कोई त्रुटि न होगी।" राजा तपस्वी के चरणों में दण्डवत् लेट गये।

"उठो राजन्! कल सवेरे से हमारा कार्यक्रम शुरू हो जायेगा।"

और अगले दिन से हमारे राजा की दिनचर्या बदल गयी। वे सवेरे-शाम पहाड़ी पर आकर तपस्वी के साथ-साथ निःशब्द बैठने लगे, क्योंकि तपस्वी कभी-कदास ही एकाध शब्द बोला करते थे, लेकिन उनके चेहरे पर सदैव मुस्कान बिखरी रहती थी। दोनों साथ-साथ ध्यान करते। कुछ देर ठहर कर राजा नीचे उतर आते। पहले कुछ हफ़्तों तक राजा के लिए अपनी इस बदली हुई दिनचर्या का अनुभव बड़ा विचित्र-सा था। दिन-रात शोर-शराबे की ज़िन्दगी गुज़ारने वाले, नगर के सर्वोपरि पद को सुशोभित करने वाले महाराज के लिए प्रकृति के साथ पहाड़ी की गोद में नीरव ध्यान!!! एकदम से आशातीत व अप्रत्याशित परिवर्तन...। महाराज कुछ अन्यमनस्क से हो उठे थे, और ऊपर से वे तपस्वी न कुछ कहते थे, न बतलाते थे, बस

भुवनमोहिनी अपनी मुस्कान बिखेरते रहते थे...।

लेकिन... महीने-भर में राजा का दृष्टिकोण ही एकदम से बदल गया!! वही व्यक्ति जिन्हें पहले कुछ हफ़्तों तक अपनी यह नयी दिनचर्या कुछ उबाऊ-सी लगती थी, अब सूर्योदय और सूर्यास्त के पहले पहाड़ी पर पहुँचने के लिए लालायित रहने लगे। अब राजदरबार के काम उन्हें यान्त्रिक और नीरस प्रतीत होने लगे, रोज़ उन्हीं चापलूस दरबारियों के बीच उठना-बैठना उनको दूभर लगने लगा। घूम-फिर कर समान ज़रूरतमन्दों को अपने सामने हाथ फैलाये देखना उन्हें गवारा न लगा। अब देने में उन्हें हार्दिक आनन्द नहीं मिलता था क्योंकि पाने वाले के मुँह की कृत्रिम कृतज्ञता के भाव उनसे छुपे नहीं रहते थे। अब तो राजा के लिए दिन का सबसे सुखद समय होता सुबह और शाम, तपस्वी के साथ।

जब-जब वे उस पहाड़ी पर बैठते, सूर्योदय और सूर्यास्त के कोमल रंगों की दुनिया से उनका हृदय रंगों से झिलमिला उठता, उनके शरीर से छूता पवन उनके कानों में स्वतन्त्रता का मन्त्र फूँक जाता, जंगलों में चिड़ियों की चहचहाहट उन्हें आनन्द का रहस्य सुना जाती और तपस्वी का मौन उन्हें जीवन के उद्देश्य की झलकें दिखा जाता। तपस्वी ने बिना बोले राजा के जीवन को इतना परिवर्तित कर दिया कि दिन का जो थोड़ा-सा समय वे यहाँ व्यतीत करते उसी के बल पर उनका बाक़ी सारा दिन भीड़ से घिरे रहने पर भी अपने-आपके साथ मूक आलाप में बीतता।

राजा को समय की भी सुध न रही। एक वर्ष पंख लगा कर कब उड़ गया, किसी को पता तक न चला। यहाँ तक कि कुछ वर्ष बीत गये। एक दिन स्वयं तपस्वी ने कहा—"राजन्, चार वर्ष बीत गये। शायद हम उन दोनों चीज़ों को भूल ही गये जिनके बारे में एक साल के बाद मैंने उत्तर देने का वचन दिया था—सबसे निर्धनतम व्यक्ति कौन है और जगत् को स्वर्ण में बदलने का कीमिया। क्या ये प्रश्न अनुत्तरित ही रह जायेंगे महाराज?"

राजा संन्यासी के चरणों में गिर पड़े। प्रेम और आनन्द की अश्रुझड़ी से उनकी आँखें धुँधलाये जा रही थीं, संन्यासी ने उन्हें धीरे से उठाया। राजा गद्गद कण्ठ से बोले—"महात्मन्! मुझे शर्मिन्दा न करें। क्या अब भी कुछ पूछना बाक़ी रह गया? मैं जानता हूँ कि औरों की दृष्टि में समृद्धतम मैं ही अपने नगर में सबसे ग़रीब था क्योंकि 'और' 'और' पाने की रट चौबीसों

घण्टे मेरे दिलोदिमाग़ पर छायी रहती थी। अपने नगण्य से दान-पुण्य पर मैं इतना इतराने लगा था मानों प्रजा का ईश्वर मैं ही हूँ। मेरे दान के बिना यह संसार ही ठप्प पड़ जायेगा। कितना मूर्ख था मैं कि धरती को स्वर्ण में बदलने का कीमिया हस्तगत करना चाहता था! यह धरती तो रोज़ अपना वह मूलमन्त्र हमें देती है। सूर्योदय और सूर्यास्त के पहले यह सारा जगत् पूरी तरह से स्वर्ण में रूपान्तरित नहीं हो जाता क्या? सुनहरी लकीरों से सजे बादल, अग-जग पर छायी हुई यह सुखद शान्ति और आनन्द, धरती के पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों—सभी जीवों की उठती हुई एक प्रार्थना हमें वह आनन्द प्रदान करती है जिसकी तुलना संसार-भर के सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात, मणि-माणिक्य, किसी से नहीं हो सकती। यह तो ईश्वर का वह अपूर्व धन है जिसे यह ऊपरवाला सुबह-शाम खुले हाथों लुटाता है, जितना समेटना है समेट लो—न कोई रोक, न किसी की टोक।"

भावावेश में राजा बहते चले जा रहे थे—"महात्मन्! इस स्वर्गिक स्वर्ग के सामने धरती का ठोस सोना तो अब ठीकरे के समान दीखता है। प्रभो! कितना बड़ा उपकार किया आपने मुझ पर। मुझे संसार का समृद्धतम मनुष्य बना दिया जिसे न अपने धन को तिजोरियों में बन्द करके रखना पड़े, न उस पर पहरा ही बिठलाना पड़े, क्योंकि उस धन की देख-रेख करने वाला तो हम सबके ऊपर बैठा ही है जो हमें बिना किसी शर्त के, हम जितना चाहें उससे कहीं अधिक धन-दौलत लिये हमारे हृदय-द्वार पर खड़ा ही रहता है।"

तपस्वी ने राजा के झुके हुए सिर को सहलाते हुए कहा—"राजन्! अब तुम सचमुच समृद्धतम पुरुष हो, क्योंकि तुमने अपने-आपको स्वर्ण में रूपान्तरित कर लिया है।" —अनु. वन्दना

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI

Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

नदी और पर्वत

एक दिन नदी के मन में ख़याल आया, "क्या मेरा जीवन बस बहना ही बहना है, कभी आराम के लिए दो घड़ी ठहर नहीं सकती भला?"

उसने पर्वत को आवाज़ लगायी, अपने मन की बात उसके सामने रखी तो पर्वत खिलखिला उठा, "अरे पगली, मुझे देख, मैं भी तो एक ही जगह पर सदियों से खड़ा हूँ।" "लेकिन तुम तो स्थिर हो, एक ही जगह पर खड़े-खड़े क्या थकान! मुझे देखो, बस बहना, बहना; दम-भर की फ़ुरसत नहीं मिलती...।" गिरिराज मुस्काये, "यह तुम सोचती हो, मैं तो खड़े-खड़े थक गया हूँ, वही पेड़, वही आसमान मेरे नज़ारे हैं, कई बार जी में आता है कि काश! मैं भी चल-फिर-भाग सकता तो तुम्हारी तरह नित नये जंगलों, पेड़ों, गाँवों की सैर करता, प्यासे खेतों को पानी पिलाता, मनुष्यों को जीवन देकर उनकी आँख का तारा बनता..." नदी बीच में ही बोल उठी, "कमाल है भाई, कितने आराम में हो तुम, फिर भी ऐसा सोचते हो।" पर्वत ने बड़ी नम्रता से कहा, "नहीं बहन, तुम सचमुच वन्दनीय हो। तुम दूसरों के लिए बहती हो, दूसरों को देकर जो तुम्हारे पास बचता है वह सब भी तुम सागर को अर्पित कर देती हो।"

पर्वतराज के चरण छूकर, दुगुने उत्साह में भर कर नदी बोली, "एकदम ठीक कह रहे हो भाई, दूसरों को जीवन प्रदान करना ही सचमुच मेरे जीवन का लक्ष्य है।"

"धन्यवाद, बहुत-बहुत धन्यवाद" कह कलकल नाद करती हुई वह चौगुने वेग से बह निकली।

सन्त की तरह स्थिर खड़े पर्वतराज भी मन्द-मन्द मुस्कुरा उठे।

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनू

श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनू (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमाँ के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगा कर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनू—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

Date of Publication: 1st April 2020
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2019-20

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363